CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सं॰ ९४६९

कविराज श्रीराजशेखरविरचिता

काव्यमीमांसा

(प्रथमाध्यायमारभ्य पञ्चमाध्यायपर्यन्ता)

कौमुदीनाम्न्या संस्कृतटीकया राष्ट्रभाषानुवादेन

च

संनायीकृता

टीकादिप्रणेता सम्पादकश्च

डॉ॰ रमाशङ्कर त्रिपाठी

व्याकरणाचार्यः, एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰,

संस्कृतपालिविभागः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः

891.21
RAJ

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

© मोतीलाल बनारसीदास

भारतीय संस्कृति साहित्य के प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली—७
शाखाएँ : चौक, वाराणसी—१ (उ० प्र०)
अशोक राजपथ, पटना—४ (बिहार)

891.21
RAS

प्रथम संस्करण : वाराणसी १९६३
द्वितीय संस्करण : वाराणसी १९८१

94262

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास बंगलो रोड,
जवाहरनगर दिल्ली—७ द्वारा प्रकाशित तथा
महाकांत प्रेस, रेवड़ी तालाब, वाराणसी द्वारा मुद्रित ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा० 09869

भूमिका

काव्य-सौन्दर्य की परीक्षा करने वाले शास्त्र को काव्यशास्त्र कहा जाता है। प्रायः दो सहस्र वर्षों की विशाल परम्परा में बिखरे हुए साहित्य-शास्त्र को पाँच सम्प्रदायों में विभक्त किया जा सकता है—

१—ध्वनि-सम्प्रदाय
२—रस-सम्प्रदाय
३—अलङ्कार-सम्प्रदाय
४—रीति-सम्प्रदाय
५—वक्रोक्ति-सम्प्रदाय

इन सम्प्रदायों की स्थापना काव्य के आत्मभूत तत्त्व के निर्धारण के कारण हुई है। जो लोग 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' कह कर ध्वनि को काव्य का आत्मा मानते हैं, वे ध्वनि-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। जो लोग रस को काव्य का आत्मा स्वीकार करते हैं, वे रस-सम्प्रदाय के अन्तर्गत हैं। जो अलङ्कारों को ही काव्य का आत्मा मानते हैं, वे अलङ्कार-सम्प्रदाय के अनुयायी कहे जाते हैं। इसी प्रकार 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कह कर जो रीति को ही काव्य का आत्मा मानने वाले हैं, वे रीति-सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। इसी रूप से 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' के अनुसार जो वक्रोक्ति को काव्य का आत्मा स्वीकार करते हैं, वे वक्रोक्ति-सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं।

१—ध्वनि-सम्प्रदाय

साहित्य-शास्त्र के सम्प्रदायों में ध्वनि-सम्प्रदाय महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय रहा है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य आनन्दवर्धन हैं। इनके मत के अनुसार 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' काव्य का आत्मा ध्वनि है। यद्यपि आगे चल कर ध्वनि के विरोध में भी बहुतों ने आवाज उठाई, किन्तु इससे इसकी वृद्धि और चमक कम न हो कर और अधिक बढ़ी ही है। ध्वनि का जैसा सयुक्तिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समर्थन काव्यप्रकाशकार मम्मट ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि मम्मट को ध्वनि का प्रतिष्ठापक परमाचार्य कहा जाता है।

२—रस-सम्प्रदाय

उपर्युक्त पाँचों सम्प्रदायों में सर्वाधिक प्रमुख तथा कदाचित् सबसे अधिक प्राचीन सम्प्रदाय रस-सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य भरत हैं। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में भरत के भी पूर्ववर्ती नन्दिकेश्वर को रस सिद्धान्त का प्रतिष्ठापक आचार्य माना है। किन्तु सम्प्रति नन्दिकेश्वर का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता है। अतः भरत को ही रस-सिद्धान्त का आदिम आचार्य मानना समीचीन होगा। रसविषयक सर्वप्रथम विवेचन भरत के 'नाट्यशास्त्र' में ही पाया जाता है। भरत मुनि का 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' यह प्रसिद्ध रससूत्र ही रससिद्धान्त का प्राणभूत है। बाद के आचार्यों ने इसी भरतसूत्र के आधार पर इसका विवेचन प्रस्तुत किया है। अतः मानना पड़ेगा कि भरत ही रस-सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। भरत के रस-सिद्धान्त के व्याख्याकारों में भट्टनायक, भट्ट लोल्लट, शङ्कुक और अभिनवगुप्त आदि चार आचार्य बहुत विख्यात हैं।

३—अलङ्कार-सम्प्रदाय

अलङ्कार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह माने जाते हैं। भामह के व्याख्याकार 'भामहविवरण' के निर्माता उद्भट और उनके बाद के दण्डी, रुद्रट तथा आगे चल कर होने वाले प्रतिहारेन्दुराज तथा जयदेव आदि इस अलङ्कार सम्प्रदाय के व्याख्याकार और समर्थक माने गये हैं। अलङ्कार सम्प्रदाय के अनुयायी भी रस की सत्ता को स्वीकार करते हैं, पर उसे प्रमुखता नहीं देते हैं। उनके अनुसार काव्य का प्राणभूत जीवनाधायक तत्त्व अलङ्कार ही है। इनका कहना है कि अलङ्कारविहीन काव्य की कल्पना वैसी ही है जैसे तापविहीन अग्नि की कल्पना—

'अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलङ्कार सम्प्रदाय वाले काव्य में अलङ्कारों को ही प्रमुख मानते हैं और वे इसका अन्तर्भाव रसवदलङ्कारों में करते हैं। रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वित् और समाहित ये चार प्रकार के रसवत् अलङ्कार माने जाते हैं। भामह और दण्डी दोनों ने ही इन रसवदलङ्कारों के भीतर ही इसका समावेश किया है—

'रसवद्दर्शितस्पष्टशृङ्गारादिरसं यथा।'

—भामह, काव्यालङ्कार ३-६

'मधुरे रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।'

दण्डी, काव्यादर्श ३-५१

४—रीति-सम्प्रदाय

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य का नाम है वामन। ये रीति को ही काव्य का आत्मा मानते हैं। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' यह उनका अतिप्रसिद्ध सिद्धांत है। रीति क्या है? इसे बतलाते हुये उन्होंने कहा है कि 'विशिष्टा पदरचना रीतिः' अर्थात् विशिष्ट पद-रचना का नाम रीति है। आगे पुनः वे 'विशेष' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'विशेषो गुणात्मा' अर्थात् पदरचना में माधुर्य आदि गुणों का समावेश ही उसकी विशेषता है और यह विशेषता ही 'रीति' है। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में रीति एवं गुणों का घनिष्ट सम्बन्ध है। यही कारण है कि इसे 'गुण सम्प्रदाय' भी कहा जाता है।

५—वक्रोक्ति-सम्प्रदाय

आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति को काव्य का जीवितभूत तत्त्व मानते हैं—'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्'। वैसे काव्य में वक्रोक्ति के मूल्य को भामह ने भी स्वीकार किया है –

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना॥

—भामह, काव्यालङ्कार २-८५

इसी प्रकार दण्डी और वामन ने भी वक्रोक्ति का वैशिष्ट्य स्वीकार किया है। किन्तु उन सबके मत से वक्रोक्ति साधारण अलङ्काररूप ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्यकुन्तक ने वक्रोक्ति को जिस महिमा से मण्डित किया है वैसा इनके पहले किसी ने नहीं किया था। यही कारण है कि ये वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। अपने इस सम्प्रदाय की स्थापना के लिए कुन्तक ने 'वक्रोक्ति जीवितम्' नामक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है।

राजशेखर

राजशेखर प्रधानतया कवि और नाटककार हैं। इनके चार प्रसिद्ध नाटक हैं (१) बालरामायण (२) बालभारत (३) विद्धशालभञ्जिका और (४) कर्पूर-मञ्जरी। इनका पाँचवाँ ग्रन्थ काव्यमीमांसा है। काव्यमीमांसा अलङ्कार-परक ग्रन्थ हैं किन्तु यह पूर्वनिर्दिष्ट अलङ्कार के आचार्यों के ग्रन्थों से नितान्त भिन्न है। इसमें ध्वनि, रस, अलङ्कार, रीति और औचित्य आदि किसी सम्प्रदाय का न तो समर्थन है और न इस तरह के किसी सम्प्रदाय की स्थापना ही इसमें की गई है। काव्यमीमांसा कवि के लिए आवश्यक जानकारी देने वाला एक विशाल ग्रन्थ है। अतः राजशेखर को स्वतन्त्र रूप में 'कविशिक्षासम्प्रदाय' का प्रवर्तक मानना अधिक समीचीन होगा। राजशेखर के बाद क्षेमेन्द्र, अरिसिंह, अमरचन्द्र और देवेश्वर आदि ने भी उनके अनुकरण पर कविशिक्षा परक ग्रन्थों की रचना की है। अतः ध्वनिसम्प्रदाय, अलङ्कार-सम्प्रदाय आदि की भाँति ही राजशेखर के द्वारा प्रवर्तित काव्य-विवेचना को कविशिक्षासम्प्रदाय कहना अधिक युक्तिसङ्गत होगा।

राजशेखर का जीवन-वृत्त

बालरामायण नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है कि वे महाराष्ट्र-चूडामणि अकालजलद के चतुर्थ अर्थात् प्रपौत्र और दर्दुरक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम शीलवती था।[1] इस नाटक की प्रस्तावना से यह भी पता चलता है कि उनके पिता किसी राज्य के मन्त्री थे।[2] राजशेखर अपने को उपाध्याय लिखते हैं, इससे निश्चित होता है कि ये ब्राह्मण थे।

---

१. तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुरिकिः शीलवतीसूनुरुपाध्यायश्रीराजशेखर इत्यपर्याप्तं बहुमानेन–बालरामायण–१। *—तदकालजलदप्रणप्तुस्तस्य गुणगणः किमिति न वर्ण्यते।–विद्धशाल भञ्जिका। १॥

२. सूक्तमिदं तेनैव मन्त्रिसुतेन। बालरामायण॥ १॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके यायावर कुल में अकाल जलद आदि अनेक विद्वान कवि हुए हैं। राजशेखर ने इन लोगों की प्रशंसा की है। इन कवियों में अकालजलद, सुरानन्द, तरल और कविराज का नाम उल्लेखनीय है।[1]

संस्कृत की सुप्रसिद्ध स्त्री कवयित्री अवन्तिसुन्दरी कविवर राजशेखर की प्राण प्रिया धर्म्मपत्नी थीं। अवन्तिसुन्दरी चौहानवंश की क्षत्रियकुमारी प्रतीत होती हैं—

चाहुमानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।
भर्त्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोक्तुमेवेच्छति॥

कर्पूरमञ्जरी १।११

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में अवन्तिसुन्दरी के शास्त्रीय मत का तीन वार उल्लेख किया है, जो उनकी साहित्यसम्बन्धिनी विद्वत्ता का परिचायक है।

महाराष्ट्र के होने पर भी सम्भवतः राजशेखर का अधिकांश जीवन कन्नौज में व्यतीत हुआ था। उन्होंने कन्नौज के प्रतिहार-वंशीय राजा महेन्द्रपाल तथा महिपाल को अपना शिष्य वतलाया है—

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधि-
स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां गुरुः।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः॥

बालरामायण १।१८॥

वालरामायण (१०, ८९–९०) तथा स्वयं काव्यमीमांसा में राजशेखर ने वर्णन-क्रम से कन्नौज को जो सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है, उससे भी यही बात प्रमाणित होती है कि उनका कन्नौज से घनिष्ठ सम्वन्ध था।

राजशेखर के ग्रंथ—

१—बालरामायण— यह एक विशालकाय नाटक है। इसमें १० अंक हैं। इसमें कवि ने नाटकीयता के साथ ही अपनी प्रौढ़ कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन भी किया है। सारा रामचरित इस एक ही नाटक में वर्णित है।

---

१. स मूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले॥ बालरामायण॥ १॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२—बालभारत— बालभारत को प्रचण्डपाण्डव भी कहते हैं। इसमें महाभारत की कथा को नाटकीय रूप प्रदान किया गया है। दुर्भाग्य से इस नाटक के अबतक आरम्भ के दो ही अङ्क उपलब्ध होते हैं। इसमें कितने अङ्क थे? तथा इसका आगे का रूप कैसा था? इस पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

३—विद्धशालभञ्जिका—यह एक नाटिका है। यह स्त्री-पात्र बहुल तथा चार अङ्कों से मण्डित है। इसमें विद्याधर मल्ल नामक राजकुमार और मृगाङ्कावली एवं कुवलयमाला नाम की दो राजकुमारियों की प्रणयकथा है।

४—कर्पूरमञ्जरी—यह एक सट्टक है। इसका विभाजन चार जवनिकांतरों में है। यह प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इसमें राजा चण्डपाल तथा कुंतलदेश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी का विवाह वर्णित है। प्राकृत भाषा में निबद्ध, विष्कम्भक एवं प्रवेश से रहित, अङ्कविहीन रचना सट्टक कही जाती है। सट्टकों के विकास में कपूरमञ्जरी का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

५—काव्यमीमांसा—राजशेखर के द्वारा विरचित काव्यमीमांसा पहले से चली आ रही परम्परा में एक योगदान है। यह एक विशालयका ग्रन्थ था। इसमें बड़े-बड़े अट्ठारह अधिकरण थे—

'इत्थङ्कारञ्च प्रकीर्णत्वात् सा किञ्चिदुच्चिच्छिदे। इतीदं प्रयोजकाङ्गवतो संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पग्रन्थेन अष्टादशाधिकरणी प्रणीता।' (पृ० ४)।

दुःख है कि सम्प्रति इस ग्रन्थ का केवल एक ही अधिकरण उपलब्ध है, जिसमें अट्ठारह अध्याय हैं। 'रीतयस्तु तिस्रस्तास्तु पुरस्तात्' तमौपनिषदिके वक्ष्यामः' आदि कहकर राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा के शेषांश की सूचना यत्र-तत्र दे दी है।

राजशेखर की कृतियों पर दृष्टिपात करने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वे एक उत्कृष्ट कोटि के साहित्य-मीमांसक, प्रथम श्रेणी के नाटककार तथा महाकवि हैं। संस्कृत-जगत् में उनका अत्यन्त महनीय स्थान है।

वसन्तपञ्चमी
सं० १०२९
८-२-१९७३

—रमाशङ्कर त्रिपाठी
बी २/२४२; भदैनी,
वाराणसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीराजशेखरविरचिता

॥ काव्यमीमांसा ॥

॥ कविरहस्यम् ॥

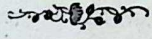

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथमोऽध्यायः–१

शास्त्रसंग्रहः

अथातः काव्यं मीमांसिष्यामहे यथोपदिदेश श्रीकण्ठः परमेष्ठिवैकुण्ठादि-भ्यश्चतुःषष्टये शिष्येभ्यः। सोऽपि भगवान् स्वयम्भूरिच्छाजन्मभ्यः स्वान्ते-वासिभ्यः। तेषु सारस्वतेयो वृन्दीयसामपि वन्द्यः काव्यपुरुष आसीत्। तं च सर्वज्ञमयविदं दिव्येन चक्षुषा भविष्यदर्थदर्शिनं भूभुंवःस्वस्त्रितयवर्ति-नीषु प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः काव्यविद्याप्रवर्त्तनायै प्रायुङ्क्त। सोऽष्टा-दशाधिकरणीं दिव्येभ्यः काव्यविद्यास्नातकेभ्यः सप्रपञ्चं प्रोवाच।

कौमुदीं सकलानन्दां शङ्करस्य शिरःस्थिताम्।
जगत्तृप्तिकरीं नित्यं नत्वा टीका वितन्यते ॥ १ ॥
प्रणम्य वाणीं पितरौ गुरूनपि दयानिधीन्।
रुचिरा काव्यमीमांसाकौमुदीयं विरच्यते ॥ २ ॥

अथ तत्र भवान् कविकुलशिखामणी राजशेखरो नाम महाकविः शिष्यजन-कल्याणकामनया कालक्रमाद् विच्छिन्नप्रायं सुकविसम्प्रदायं प्राचीनाकरग्रन्थेभ्यो गुरुसम्प्रदायाच्च यथायथं संगृह्य निबध्नाति–अथात इति। अथ वाल्मीकिरामायणहर-विलासादिदृश्यश्रव्यकाव्यनिर्माणानन्तरम्, अतः काव्यविचारात्मकमीमांसाशास्त्रस्य काव्यनिर्माणानन्तरमेव सुकरत्वाद्धेतोरित्यर्थः। 'काव्यं मीमांसिष्यामहे' इति प्रतिज्ञा। तस्या महनीयां गुरुपरम्परां प्रदर्शनायाह --यथोपदिदेशेति। श्रीकण्ठः काव्यमीमांसाशास्त्रस्य प्रवर्तको गुरुरिति निर्दिष्टं यथा व्याकरणशास्त्रे। सम्प्र-दायक्रमं दर्शयति—सोऽपीत्यादिना। इच्छाजन्मभ्यः मानसपुत्रेभ्यः, सारस्वतेयः सरस्वत्याः पुत्रः, वृन्दीयसाम् वन्द्यतमानाम्। अष्टादशाधिकरणीम् अष्टाद-शाधिकरणोपेताम्, सप्रपञ्चम् सविस्तरम्।

दृश्य तथा श्रव्य काव्यों की रचना के अनन्तर (अथ),काव्य के विश्लेषण से भरपूर मीमांसाशास्त्र के काव्य-निर्माण के अनन्तर ही सुकर होने के कारण (अतः) काव्य की विवेचना आरम्भ करता हूँ, जैसा कि श्रीकण्ठ (शिव) ने परमेष्ठी, वैकुण्ठ आदि चौंसठ शिष्यों को उपदेश किया था। उन भगवान् स्वयम्भू

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र कविरहस्यं सहस्राक्षः समाम्नासीत् । औक्तिकमुक्तिगर्भः । रीतिनिर्णयं सुवर्णनाभः । आनुप्रासिकं प्रचेताः । यमो यमकानि । चित्रं चित्राङ्गदः । शब्दश्लेषं शेषः । वास्तवं पुलस्त्यः । औपम्यमौपकायनः । अतिशयं पाराशरः । अर्थश्लेषमुतथ्यः । उभयालङ्कारिकं कुबेरः । वैनोदिकं कामदेवः । रूपकनिरूपणीयं भरतः । रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः । दोषाधिकरणं धिषणः । गुणोपादानिकमुपमन्युः । औपनिषदिकं कुचमारः । इति । ततस्ते पृथक् पृथक् स्वशास्त्राणि विरचयाञ्चक्रुः ।

इत्थमुपदिष्टेषु काव्यपुरुषशिष्येषु केन कस्य विषयस्य प्रचारः कृत इति निर्दिशन्नाह—

तत्र कविरहस्यमित्यादि । सहस्राक्षः इन्द्रः, औक्तिकम् उक्तौ वैचित्र्यापादकं शब्दशक्तिविषयं ग्रन्थम्, वास्तवम् यथार्थवर्णनसम्बन्धिनम्, स्वभावोक्तिमिति यावत् । वैनोदिकम् मनोविनोदसम्बधिनम्, हास्यरसाश्रयमित्यर्थः ।

(परमेष्ठी, ब्रह्मा) ने भी अपने मानस-पुत्र शिष्यों को (इसका) उपदेश किया । ब्रह्मा के उन शिष्यों में सरस्वती-पुत्र काव्यपुरुष भी एक था, जो पूज्यतर देवताओं के लिए भी वन्दनीय था । समस्तकाल के ज्ञाता, दिव्य दृष्टि से भविष्य की बातों को भी जान लेने वाले उस काव्यपुरुष को ब्रह्मा ने भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक रूप तीनों स्थानों में रहने वाली प्रजा की कल्याण-कामना से काव्य-विद्या (काव्यशास्त्र) का प्रचार करने के लिए नियुक्त किया । उन काव्य-पुरुष ने अट्ठारह अधिकरणों में विभक्त इस काव्य-विद्या का सविवरण उपदेश काव्य-शास्त्र के अपने दिव्य स्नातकों को दिया ।

(काव्य-पुरुष ने अट्ठारह अधिकरणात्मिका काव्यमीमांसा के अध्येता उन शिष्यों में) सहस्राक्ष (इन्द्र) ने 'कविरहस्य' की रचना की, उक्तिगर्भ ने 'उक्तिविषयक' ग्रन्थ (शब्दशक्ति-विषयक ग्रन्थ) की रचना की, सुवर्णनाभ ने 'रीतिनिर्णय' का निर्माण किया, प्रचेता ने 'अनुप्रास सम्बन्धी ग्रन्थ' को रचा, इसीप्रकार यम ने यमक-सम्बन्धी, चित्राङ्गद ने चित्रकाव्य-विषयक, शेष ने शब्दश्लेष पर, पुलस्त्य ने वास्तव अर्थात् स्वभावोक्ति पर, औपकायन ने उपमा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्थङ्कारञ्च प्रकीर्णत्वात् सा किञ्चिदुच्चिच्छिदे । इतीयं प्रयोजकाङ्गवती सङ्क्षिप्य सर्वमर्थमल्पग्रन्थेन अष्टादशाधिकरणी प्रणीता ।

तस्या अयं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः । शास्त्रसङ्ग्रहः, शास्त्रनिर्देशः, काव्यपुरुषोत्पत्तिः, पदवाक्यविवेकः, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासनं, वाक्यविधयः,

---

स्वग्रन्थप्रणयनप्रयोजनमाह—इतीयमिति । इति अतो हेतोः, **प्रयोजकाङ्गवती** वस्तुतः प्रयोजनाङ्गवतीति पाठः समीचीनो ग्रन्थप्रणयनस्य प्रेक्षावतां प्रवृत्तेश्च सप्रयोजनत्वात्, प्रयोजकन्तु नाङ्गभावमर्हति ग्रन्थस्येति सुधियो विभावयन्तु, **अष्टादशाधिकरणी** अष्टदशाधिकरणोपेता ।

अलङ्कार के सम्बन्धमें, पराशर ने अतिशयोक्ति के सम्बन्ध में, उतथ्य ने अर्थश्लेष पर, कुबेर ने शब्द और अर्थ-उभय अलङ्कारों के विषय में, कामदेव ने विनोद-सम्बन्धी विषय (अर्थात् हास्य) पर, भरत ने नाट्य-विषय पर, नन्दिकेश्वर ने रस विषय पर, धिषण (वृहस्पति) ने दोषविषयक, उपमन्यु ने गुणों के उपादान के सम्बन्ध में और कुचुमार ने औपनिषदिक (रहस्यतन्त्र) ग्रन्थ की रचना की । इस प्रकार उन लोगों ने अलग-अलग (विषयों पर) अपने-अपने शास्त्रों की रचना की ।

विशेष–औपनिषदिकम् :—कुचुमार जी ने अपने इस ग्रन्थ में कवित्वशक्ति के उत्कर्ष की प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया था । मिलाइये—अर्थशास्त्र तथा कामसूत्र का औपनिषदिक अध्याय ।

ते विरचयाञ्चक्रुः—काव्यपुरुष के सहस्राक्ष आदि अट्ठारह शिष्य थे । इन शिष्यों में प्रत्येक ने एक-एक विषय पर स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की थी ।

इस प्रकार (अनेक आचार्यों के द्वारा अलग-अलग खण्डों में प्रणीत अतः) विखरी होने के कारण काव्य विद्या कुछ छिन्न-भिन्न सी हो गई थी । यही कारण है कि मैंने सभी (आवश्यक) अर्थों को संक्षिप्त करके प्रयोजक (वस्तुतः प्रयोजन) रूप अङ्गवाली अट्ठारह अधिकरणों से युक्त छोटे ग्रन्थ के रूप में इस काव्य-मीमांसा की रचना की है ।

उस (काव्यमीमांसा) के (प्रथम) अधिकरण के प्रकरणों का यहाँ नाम-निर्देशपूर्वक वर्णन किया जा रहा है । (वह इस प्रकार है)—१–शास्त्र-संग्रह, २–शास्त्र-निर्देश, ३-काव्य-पुरुष की उत्पत्ति, ४–पदवाक्य-विवेक, ५-पाठ-प्रतिष्ठा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कविविशेषः, कविचर्या, राजचर्या, काकुप्रकाराः, शब्दार्थहरणोपायाः, कविसमयः, देशकालविभागः, भुवनकोश इति कविरहस्यं प्रथममधिकरणमित्यादि ।

इति सूत्राण्ययैतेषां व्याख्या भाष्यं भविष्यति ।
समासव्यासविन्यासः सैष शिष्यहिताय नः ॥
चित्रोदाहरणैर्गुर्वी ग्रन्थेन तु लघीयसी ।
इयं नः काव्यमीमांसा काव्यव्युत्पत्तिकारणम् ॥

काव्यमीमांसायाः प्रथमाधिकरणमात्रेऽस्मिन् ग्रन्थे निरूपणीयान् विषयान् नामनिर्देशपूर्वकमाह—शास्त्रसंग्रह इत्यादिना । अत्र ग्रन्थकर्ताऽष्टादशप्रकरणेषु वर्णितान् पञ्चदशविषयान् उल्लिखितवान् । कतिपये विषया अध्यायद्वये वर्णिताः सन्तीति ।

नः=अस्मत्कर्तृका इयं काव्यमीमांसा । सा=माहिमण्डितेत्यर्थः, इयं सा काव्यमीमांसा एष काव्यविषयको मीमांसा=विचारः, यत्र=

६–अर्थानुशासन, ७–वाक्य-विवेक, ८–कवि-विशेष, ९–कविचर्या, १०–राजचर्या, ११–काकुप्रकार, १२–शब्दार्थहरणोपाय, १३–कविसमय, १४–देशकालविभाग, १५–भुवनकोश । इन प्रकरणों को मिलाकर कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण की रचना हुई है ।

विशेष—ग्रंथकार ने अट्ठारह अध्यायों में उल्लिखित १५ विषयों का निर्देश किया है । अतः इसे अध्यायों का क्रम न जानकर विषयक्रम ही समझना चाहिये । कुछ विषय दो-दो अध्यायों में वर्णित हैं ।

बड़ौदा तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना एवं नारायण शास्त्री खिस्ते द्वारा सम्पादित चौखम्भा संस्कृत सीरीज की प्रतियों में उपर्युक्त १५ प्रकरण ही निर्दिष्ट हैं, किन्तु चौखम्भा के एक दूसरे संस्करण में १–शिष्यप्रतिभा, २–व्युत्पत्तिविपाक तथा ३–काव्यार्थयोनि—इन तीन अधिक प्रकरणों का भी उल्लेख किया गया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इयं सा काव्यमीमांसा मीमांसा यत्र वाग्लवः ।
वाग्लवं न स जानाति न विजानाति यस्त्विमाम् ॥
यायावरीयः सङ्क्षिप्य मुनीनां मतविस्तरम् ।
व्याकरोत्काव्यमीमांसां कविभ्यो राजशेखरः ॥

इति राजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे
प्रथमोऽध्यायः शास्त्रसङ्ग्रहः ।

यस्मिन् विचारे, वाग्लवः=एतद्ग्रन्थरूपो मदीयो वाग्लवः । यायावरीयः= यायावरकुलोत्पन्नो राजशेखरो भरतादीनां पूर्वाचार्याणां मतविस्तृतं संक्षिप्य काव्यमीमांसां व्याकरोत् । किमर्थम् ? कविभ्यः कवीनां कृत इत्यर्थः । अनेन फलितं यत् कवय एवास्य ग्रन्थस्याधिकारिणो नान्य इति । यथा च, अष्टादशाधिकरणी काव्यविद्याऽस्य विषयः, काव्यव्युत्पत्तिः प्रयोजनम्, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावःसम्बन्धः, कवयश्चाधिकारिण इत्यनुबन्धचतुष्टयमपि निर्दिष्टम् ।

॥ इति शाण्डिल्यगोत्रोद्भवेन रमाशङ्करत्रिपाठिना विरचितायां
काव्यमीमांसाकौमुद्यां शास्त्रसंग्रहो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ऊपर संक्षिप्त रूप से (सूत्ररूप से) इनका निर्देश किया गया है । अब अगले अध्यायों में इनकी व्याख्या तथा भाष्य अथवा व्याख्यारूप भाष्य होगा । मैंने शिष्यों के कल्याण के लिए (आवश्यकता के अनुरूप कहीं-कहीं) यह विस्तृत तथा कहीं-कहीं संक्षिप्त विवेचन किया है ।

हमारी यह काव्यमीमांसा ग्रंथ के रूप में लघुकाय होने पर भी विचित्र उदाहरणों से भरपूर है, अथवा विचित्र उदाहरणों के कारण महत्त्वपूर्ण है । यह काव्यमीमांसा काव्यविद्या (अर्थात् कविता-निर्माण की कला) में निपुणता प्रदान करनेवाली है ।

यह (जगद्विदित) वह काव्यमीमांसा नामक विचार है जिस विचार (के प्रसङ्ग) में यह मेरा ग्रंथ वाग्लव (वाणी का एक अंश) मात्र है । जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीयोऽध्यायः-२

शास्त्रनिर्देशः

इह हि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च। शास्त्रपूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेष्वभिनिविशेत। नह्यप्रवर्ततप्रदीपास्ते तत्त्वार्थसार्थमध्यक्षयन्ति।

तच्च द्विधा अपौरुषेयं पौरुषेयं च। अपौरुषेयं श्रुतिः। सा च मन्त्र-

---

मूलभूतं वाङ्मयं द्विधा विभजते—इह हीति। वाङ्मयम्=वाणीविलासभूतः वाक्प्रपञ्चः, उभयथा=द्विविधम्। अनधीतशास्त्राणां न काव्यव्युत्पत्तिर्जायतेऽत आह—शास्त्रपूर्वकत्वात्काव्यानाम्। काव्येषु नैपुण्यलाभाय पूर्वं शास्त्राणामभ्यासोऽवश्यं विधेयः। दृष्टान्तमाह—न हीति। यथाऽगृहीतप्रदीपा अन्धकारे वर्तमानं वस्तु न पारयन्त्यवलोकयितुं तथैवानधीतशास्त्रा अपि न प्रभवन्ति काव्यनिर्माणे प्रवीणा भवितुमिति।

श्रुतेः स्वरूपमाह—सा चेति। मन्त्रब्राह्मणयोः श्रुतिरिति संज्ञेति भावः। आह

(कवि) इस काव्यमीमांसा को नहीं जानता है, वह वाणी के एक कणमात्र को भी नहीं जानता।

यायावर-कुल में उत्पन्न राजशेखर ने (भरत आदि पूर्व) मुनियों के विस्तृत मतों को संक्षिप्त करके कवियों के लिए इस काव्यमीमांसा की रचना की है।

॥ राजशेखर के द्वारा निर्मित काव्यमीमांसा के कविरहस्य नामक
प्रथम अधिकरण का शास्त्र-संग्रह नामक यह प्रथम
अध्याय समाप्त हुआ ॥

हमारे यहाँ वाङ्मय के दो भेद हैं—(१) शास्त्र और (२) काव्य। काव्य-निर्माण के पहले शास्त्र-ज्ञान आवश्यक है। अतः पहले शास्त्रों का सपरिश्रम अध्ययन करना चाहिये, क्योंकि अँधेरे में रखी हुई वस्तु तब तक नहीं देखी जा सकती जब तक कि दीपक की सहायता न ली जाय। (ठीक इसी प्रकार शास्त्र-ज्ञान के बिना काव्य-निर्माण असम्भव है।)

वह शास्त्र दो प्रकार का है—(१) पौरुषेय तथा (२) अपौरुषेय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणे। विवृतक्रियातन्त्रा मन्त्राः। मन्त्राणां स्तुतिनिन्दाव्याख्यानविनियोगग्रन्थो ब्राह्मणम्।

ऋग्यजुःसामवेदास्त्रयी आथर्वणश्च तुरीयः। तत्रार्थव्यवस्थितपादा ऋचः। ताः सगीतयः सामानि। अच्छन्दांस्यगीतानि यजूंषि। ऋचो यजूंषि सामानि चाथर्वणं त इमे चत्वारो वेदाः।

च भगवान् आपस्तम्बः—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। मन्त्रपरिभाषामाह—विवृतेति। विवृतम्=ज्ञापितं क्रियातन्त्रम्=क्रियाप्रयोगो यैस्ते। ब्राह्मणस्वरूपमाह–मन्त्राणामिति। मन्त्रभागस्य भाष्यात्मको ग्रन्थो ब्राह्मण इति भावः।

ऋगादीनां स्वरूपं निर्दिशन्नाह–तत्रेति। अर्थव्यवस्थितपादाः—अर्थेन=अर्थवशेन व्यवस्थिताः= शास्त्रनिरूपितविधानमापन्नाः पादाः=चरणाः यासु ताः, अर्थसमाप्त्यधीनैव यत्र पादसमाप्तिरिति भावः, ऋचः–ऋच्यन्ते=प्रस्तूयन्ते देवा आभिरिति ऋचः। अच्छन्दांसि छन्दोरहितानि, अगीतानि अगेयानि, गद्यमयानीति यावत्।

(अपौरुषेय उसे कहते हैं जो किसी व्यक्तिविशेष के द्वारा बनाया हुआ नहीं होता है)। श्रुति अपौरुषेय है। वैदिक-साहित्य के मन्त्र-भाग एवं ब्राह्मण-भाग को श्रुति कहते हैं। याज्ञिक क्रिया-कलाप को बतलाने वाले मन्त्र हैं (अर्थात् मन्त्रों के द्वारा यज्ञसम्बन्धी कार्यविधियाँ बतलायी गई हैं। मन्त्रों की स्तुति, निन्दा, व्याख्यान तथा विनियोग आदि का बोधक ग्रन्थ ब्राह्मण कहा गया है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनों को त्रयी (वेदत्रयी) कहा जाता है। अथर्व नामक चौथा वेद है। इसमें अर्थ के अनुसार प्रत्येक पाद की जहाँ व्यवस्था हो, उसे ऋचा (अर्थात् ऋग्वेद) कहते हैं। ये ही ऋचाएँ जब गेयरूप में होती हैं तो साम कहलाती हैं। जो न तो छन्दोबद्ध हो और न गाया ही जा सके उसे यजुर्वेद कहते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद —ये चार वेद हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतिहासवेदधनुर्वेदौ गान्धर्वायुर्वेदावपि चोपवेदाः । "वेदोपवेदात्मा सार्ववर्णिकः पञ्चमो गेयवेदः" इति द्रौहिणिः ।

"शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दोविचितिः, ज्योतिषं च षडङ्गानि"इत्याचार्याः । "उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम्" इति यायावरीयः । ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः । यथा—

गन्धर्वस्य वेदत्वे प्राचीनाचार्यस्य द्रौहिणेः सम्मतिमाह—वेदोपवेदात्मेति । वेदः उपवेदश्च आत्मा=स्वरूपं यस्य, अथवा वेदोपवेदानामात्मा=सारभूतः । सार्ववर्णिकः=सर्ववर्णैःपठितु योग्यः सार्ववर्णिकः (तदर्हतीति ठक्) गेयवेदः—गानार्हो वेदः । तत्र वेदात्मनो गेयवेदस्य न सार्ववर्णिकत्वम् । उपवेदात्मन एव तस्य सार्ववर्णिकत्वमिति ध्येयम् ।

यायावरीयनाम्ना स्वस्य मतमाह— उपकारकत्वादिति । वेदस्य षडङ्गेष्वपरिगणनेऽपि स्वारस्यबोधकत्वेनोपकारकत्वादलङ्कारोऽपि सप्तममङ्गमिति । तत्सा-

---

इतिहास-वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा आयुर्वेद–ये चार उपवेद हैं । (ये क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद से सम्बद्ध माने जाते हैं) । द्रौहिणि नामक आचार्य का मत है कि सभी वर्णों के लिए उपयुक्त एवं सभी वेदों तथा उपवेदों का सारभूत गान-वेद है ।

विशेष—'गेयवेदः' के स्थान पर कुछ लोग 'नाट्यवेदः' यह पाठ रखना चाहते हैं, क्योंकि नाट्यशास्त्र में कहा गया है–"तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्" । (१-१२) ।

आचार्यों का कथन है कि—१–शिक्षा, २–कल्प- ३–व्याकरण, ३–निरुक्त ५–छन्दो-निर्माण तथा ६–ज्योतिष–ये (वेद के) छः अङ्ग हैं । (उक्त छः अङ्गों की ही भाँति अलङ्कारशास्त्र भी वेद के अर्थ-ज्ञान का) साधक होने के कारण अलङ्कार-शास्त्र सातवाँ अङ्ग है—यह मत यायावर गोत्र में उत्पन्न राजशेखर का है । अलङ्कार के सम्यग् ज्ञान के बिना (स्थल-विशेष में) वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है । जैसे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

सेयं शास्त्रोक्तिः । प्रत्यधिकरणं च ऋचं यजुः सामाथर्वणं ब्राह्मणं चोदाहृत्य भाषामुदाहरिष्यामः ।

हार्य्यं विना वेदार्थानवगतिरूपामापत्तिमुदाहरणेन प्रदर्शयति–द्वा सुपर्णेति । द्वा=द्वौ, सुपर्णा=शोभनपर्णयुक्तौ पक्षिणावित्यर्थः, सयुजा=सयुजौ सहचराविति यावत्, सखाया= सखायौ, समानम्=एकम्, वृक्षम्=वृक्षरूपं शरीरमित्यर्थः, परिषस्वजाते= आलिङ्गतः, तयोः पक्षिणोर्मध्ये, अन्यः=अन्यतरः, विज्ञानात्मस्वरूप इति यावत् स्वादु=मधुरम्, पिप्पलम्=इदं फलोपलक्षणम् । फलसामान्यमित्यर्थः । कर्मफल-मित्यभिप्रायः । अत्ति=भक्षयति, अन्यः=पूर्वोक्तादपरः, अनश्नन्=अभक्षयन् सन्, अभिचाकशीति=सर्वतोऽवधानतया पश्यतीत्यर्थः । ऋते चेति—अलङ्कारज्ञानं विना वेदानां यथार्थतोऽर्थावगतिर्न जायते ।

"सुन्दर पङ्खवाले, सर्वदा एक साथ रहने वाले, परस्पर मित्रता (समानता) रखने वाले, (आत्मा और परमात्मा रूप) दो पक्षी एक ही (शरीर रूप) वृक्ष में निवास करते हैं । उनमें एक स्वादयुक्त पिप्पल-फलों (कर्म-फलों) को खाता है और दूसरा विना कुछ खाये ही सब कुछ देखता रहता है ।

(श्वेताश्वतर ४-६)

विशेष—इस मन्त्र में रूपक अलङ्कार के द्वारा एक ही शरीर में साथ-साथ रहनेवाले जीवात्मा और परमात्मा को आलङ्कारिक भाषा में दो पक्षियों के रूप में वर्णित किया गया है । कहने का अभिप्राय यह है कि वेदमन्त्रों में बहुत से ऐसे आलङ्कारिक वर्णन मिलते हैं जिन्हें रूपक-उपमा आदि अलङ्कारों से रोचक बनाया गया । उनके अर्थ-ज्ञान के लिए अलङ्कारों का ज्ञान आवश्यक है । अतः अलङ्कार को भी वेद का सातवाँ अङ्ग राजशेखर मानते हैं ।

यह शास्त्र-वचन अलङ्कारीय ज्ञान के विना नहीं जाना जा सकता । आगे प्रत्येक अधिकरण में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद से उद्धरण दे करके (संस्कृत) भाषा का विवेचन करेंगे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिः निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षा आपिशलीयादिका ।

नानाशाखाधीतानां मन्त्राणां विनियोजकं सूत्रं कल्पः । सा च यजुर्विद्या । शब्दानामन्वाख्यानं व्याकरणम् ।

कल्पमाह—नानाशाखाधीतानामिति । विभिन्नासु शाखासु पठितानां मन्त्राणां मध्ये कस्य कुत्र विनियोग इति कल्पसूत्रे निरूपितं भवतीति । सा च यजुर्विद्या—कल्पविद्या सम्बन्धाद्यजुर्वेदस्यान्तर्गतैवेति यागक्रियासमर्थकं शास्त्रं कल्प इति निगद्यत इति भावः ।

व्याकरणमाह—शब्दानामिति । स्वतः सिद्धानां प्रकृतिप्रत्ययपूर्वकं साधनम्-अन्वाख्यानमनु= पश्चात्, आख्यानम्=साधनमिति व्युत्पत्तिः । व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्युत्पत्तेः ।

इन वेदाङ्गों में शिक्षा-शास्त्र वह है, जिसमें (उच्चारण-) स्थान, करण, प्रयत्न आदि के द्वारा वर्णों की निष्पत्ति का निर्णय किया गया हो—जैसे—आपिशलीय शिक्षा आदि ।

विशेष—आचार्य सायण ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में शिक्षा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि—"जिसमें स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण की विधि बतलायी गई हो वह शिक्षा है"—"स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते सा शिक्षा ।"

भिन्न-भिन्न शाखाओं में पढ़े गये मन्त्रों का (यथोचित कर्मों में) विनियोग बतलाने वाले ग्रन्थों का नाम कल्प है । (जैसे—कात्यायन, आश्वलायन आदि कल्प सूत्र हैं) यह कल्प-विद्या मुख्यतः यजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाली है ।

शब्दों के अन्वाख्यान (अर्थात् प्रकृति, प्रत्यय आदि) को बतलाने वाला शास्त्र व्याकरण है । (जैसे पाणिनि, आपिशलि, शाकटायन आदि के ग्रन्थ व्याकरण हैं)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निर्वचनं निरुक्तम् । छन्दसां प्रतिपादयित्री छन्दोविचितिः । ग्रहगणितं ज्योतिषम् । अलङ्काराख्यानं तु पुरस्तात् ।

पौरुषेयं तु पुराणम्, आन्वीक्षिकी, मीमांसा, स्मृतितन्त्रमिति चत्वारि शास्त्राणि । तत्र वेदाख्यानोपनिबन्धप्रायं पुराणमष्टादशधा । यदाहुः-

सर्गः प्रतिसंहारः कल्पो मन्वन्तराणि वंशविधिः ।
जगतो यत्र निबद्धं तद्विज्ञेयं पुराणमिति ॥

निरुक्तमाह—**निर्वचनमिति** । वैदिकशब्दानां निर्वचनम्=निश्चयेन कथनं निरुक्तम् । वर्णागमादिभिर्निश्चयेन कथनमिति यावत् ।

साङ्गमपौरुषेयं वाङ्मयं निरूप्य पौरुषेयं वर्णयन्नाह—**पौरुषेयमिति** । पुराणम्—पुरा भवं पुराणं सर्गादिपञ्चलक्षणसमन्वितं व्यासप्रणीतं भागवतादि-पुराणम्, आन्वीक्षिकी—अनु=पश्चात् ईक्षा=पर्यालोचनमन्वीक्षा सा प्रयोजनं यस्या सा आन्वीक्षिकी तर्कविद्या; तन्त्रम्—शास्त्रम् ।

प्रथमं पुराणलक्षणमाह—**तत्रेति** । **वेदाख्यानोपनिबन्धनप्रायम्**=वेदेषु बीजरूपेणोपन्यस्तानामाख्यानानां विस्तरेण प्रायो वर्णनमेव पुराणविषयः ।

पुराणस्वरूपमाह—सर्ग इति । सर्गं जगतो निर्माणम्, प्रतिसंहारः=

(वैदिक शब्दों का) विवेचन (अर्थात् अर्थ वर्णागम आदि का निर्णय) करने वाला शास्त्र निरुक्त है । (अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् गायत्री आदि) छन्दों के लक्षण आदि का प्रतिपादक शास्त्र छन्दोविचिति है ।

यहाँ तक वेद-संज्ञक अपौरुषेय शास्त्रों तथा उनके अङ्गों का वर्णन किया गया अब आगे पौरुषेय (पुरुषनिर्मित) शास्त्रों का वर्णन-प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) पुराण, (२) आन्वीक्षिकी (अनुमानविद्या, तर्कशास्त्र), (३) मीमांसा और (४) धर्मशास्त्र—ये चार शास्त्र पौरुषेय है ।

उनमें प्रायः वेदों में वर्णित आख्यानों का (आलङ्कारिक ढङ्ग से) विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करना पुराणों का विषय है । ये पुराण अट्ठारह (१८) हैं । जैसा कि (इनके विषय में) कहा गया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पुराणप्रविभेद एवेतिहासः" इत्येके । स च द्विधा परिक्रियापुराकल्पाभ्याम् । यदाहुः—

परिक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा ।
स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका ॥

तत्र रामायणं भारतं चोदाहरणे ।

आन्वीक्षिकीं तु विद्यावसरे वक्ष्यामः ॥

अवान्तरसृष्टिः, ब्रह्मणो निर्माणानन्तरं दक्षादीनां सृष्टिरित्यर्थः, कल्पः=प्रलयः मन्वन्तराणि—मनूनाम् स्वायम्भुवादीनाम् अन्तराणि अवसराः, वंशविधिः=राजादीनां वंशवर्णनम् ।

इतिहासस्यापि पौरुषेयत्वात् कथन्न पौरुषेयवाङ्मये तद्गतेति जिज्ञासायामाह—पुराणप्रविभेद इति । 'एके' इति कथनेनेदं सूचितं यदन्ये पुराणवंशवर्णनमेवेतिहाससत्तां स्वीकुर्वन्तीति। रामायणम्–एकनायकत्वाद्रामायणं परिक्रिया तथा बहुनायकत्वाद् भारतः पुराकल्प इति विवेकः ।

आन्वीक्षिकीमाह—आन्वीक्षिकीम् । आन्वीक्षिकीस्वरूपं तु विद्याव्याख्यावसरे वक्ष्यत इति नेहोच्यते ।

जिसमें जगत् की सृष्टि, प्रतिसर्ग (अर्थात् ब्रह्मा की सृष्टि के अनन्तर दक्ष आदि के द्वारा की गई सृष्टि), प्रलय, मन्वन्तर तथा वंशवर्णन–इन पांच विषयों–का उपनिबन्धन किया गया हो, उसे पुराण कहते हैं ।

कुछ लोग यह मानते हैं कि इतिहास पुराण का ही एक भेद है । वह (इतिहास) दो प्रकार का होता है—(१) परिक्रिया और (२) पुराकल्प । जैसा कि (इस विषय में) कहा भी गया है—

इतिहास का स्वरूप दो प्रकार का है–(१) परिक्रिया और (२) पुराकल्प । जिसमें एक ही नायक (को आधार बना कर कथानक) का वर्णन किया गया हो वह परिक्रिया है, और जिसमें बहुत से नायकों का वर्णन किया गया हो वह पुराकल्प है । इन दोनों के उदाहरण क्रमशः रामायण और महाभारत हैं (अर्थात् रामायण परिक्रिया तथा महाभारत पुराकल्प है) ।

आन्वीक्षिकी का वर्णन आगे विद्याओं की व्याख्या के अवसर पर करेंगे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निगमवाक्यानां न्यायैः सहस्रेण विवेक्त्री मीमांसा। सा च द्विविधा विधिविवेचनी ब्रह्मनिदर्शनी च।

अष्टादशैव श्रुत्यर्थस्मरणात्स्मृतयः। "तानीमानि चतुर्दश विद्यास्थानानि, यदुत वेदाश्चत्वारः, षडङ्गानि, चत्वारि शास्त्राणि" इत्याचार्याः। तान्येतानि कृत्स्नामपि भूर्भुवःस्वस्त्रयीं व्यासज्य वर्त्तते। तदाहुः—

मीमांसां निर्वक्ति—**निगमवाक्यानामिति। निगमवाक्यानाम्**=वेदवाक्यानाम् **न्यायैः**=युक्तिभिः, **सहस्रैरित्युपलक्षणमसंख्यैरिति यावत्, विवेक्त्री**=विवेचिका। **विधिविवेचनी**—विधीनाम्=कर्मकाण्डानां विवेचनी=विवेचिका, पूर्वमीमांसेत्यर्थः, **ब्रह्मनिदर्शनी-ब्रह्मणः**= वेदान्तमहावाक्यतात्पर्यभूतस्य निदर्शनम्= प्रतिपादनं यस्यां सा तादृशी।

स्मृति निर्वक्ति–**अष्टादशैवेति। श्रुत्यर्थस्मरणात्**-श्रुतीनाम्=वेदानां येऽर्थाः= अभिप्रायास्तेषां स्मरणम्=कथनम्। **स्मृतयः** श्रुत्यर्थमेवानुगच्छन्तीति सारः। **विद्यास्थानानि**–विद्यानां स्थानानि=अधिकरणानि। **व्यासज्य**=अभिव्याप्य।

सहस्र तर्कों से वेद-वाक्यों का विवेचन करनेवाला शास्त्र मीमांसा है। वह दो प्रकार का है—१–विधि अर्थात् कर्मकाण्ड का विवेचन करनेवाला (पूर्वमीमांसा शास्त्र), तथा २–ब्रह्ममीमांसा-शास्त्र (अर्थात् ब्रह्मविषयक विवेचन करनेवाला वेदान्त-शास्त्र)।

वेद के अर्थों का स्मरण करानेवाली (अर्थात् वेद के ही अभिप्रायों के अनुसार सम्मति देने वाली) स्मृतियाँ भी अट्ठारह (१८) ही हैं। इस प्रकार प्राचीन आचार्यों के मत से विद्यास्थान (अर्थात् विद्याएँ) चौदह हैं। जैसे चार वेद, छः अङ्ग तथा चार शास्त्र।

विशेष—चतुर्दश विद्यास्थानानि। याज्ञवल्क्यस्मृति (१।३) के अनुसार चौदह विद्याएँ इस प्रकार हैं—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

इस प्रकार ये चौदह (१४) विद्याएँ भूः, भुवः तथा स्वः रूप सम्पूर्ण त्रिलोकी को व्याप्त किये हुए हैं। इस विषय में कहा भी गया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्यास्थानानां गन्तुमन्तं न शक्तो जीवेद्वर्षाणां योऽपि साग्रं सहस्रम् ।
तस्मात्संक्षेपादर्थसन्दोह उक्तो व्यासः संत्यक्तो ग्रन्थभीरुप्रियार्थम् ॥

"सकलविद्यास्थानैकायतनं पञ्चदशं काव्यं विद्यास्थानम्" इति यायावरीयः । गद्यपद्यमयत्वात् कविधर्मत्वात् हितोपदेशकत्वाच्च । तद्धि शास्त्राण्यनुधावति ।

विद्यास्थानप्रशंसायां पूर्वाचार्यप्रशस्तिमुद्धरति—विद्यास्थानानामिति । योऽपि=यः कश्चिदपि, वर्षाणाम्=संवत्सराणाम्, साग्रम्=निखिलम्, सहस्रम्=सहस्रवर्षसमूहमित्यर्थः, जीवेत्=जीवनधारणं कुर्यात्, स जनोऽपि, विद्यास्थानानाम्=चतुर्दशविद्यानामित्यर्थः, अन्तम्=पारम्, गन्तुम्=यातुम्,न शक्तः=न समर्थः तस्मात्=अतः, संक्षेपात्=समासात्, अर्थसन्दोहः=विद्यार्थानां समूहः, उक्तः=कथितः, ग्रन्थभीरुप्रियार्थम्—ग्रन्थेभ्यः=विशालपुस्तकेभ्यः भीरवः=भयशीलाः, अध्ययनभयशीला इत्यर्थः, तेषां प्रियार्थम्=प्रसन्नतार्थम्, व्यासः=विस्तारः, सन्त्यक्तः=परिहृतः ।

पूर्वमुक्तं विद्यास्थानानि चतुर्दशेति । अधुना स्वमतेन काव्यमपि पञ्चदशं विद्यास्थानमस्तीति कथयन्नाह-सकलेत्यादिः । सकलविद्यास्थानैकायतनम्-सकलानाम्=समग्राणाम् विद्यास्थानानां एकायतनम्=सङ्गमस्थलम्, काव्यं=कविकर्म पञ्चदशं विद्यास्थानमिति । काव्यं पञ्चदशं विद्यास्थानमित्यर्थः । सकलविद्यास्थानैकायतनत्वे हेतुमाह-गद्यपद्यमयत्वादिति । शास्त्रैः सह काव्यस्य सम्बन्धमाह-

---

"जो व्यक्ति पूर्ण हजार वर्ष तक जीवित रहे, वह भी इन विद्यास्थानों (अर्थात् विद्याओं) का अन्त नहीं पा सकता है । अतः संक्षेप में ही इनके अर्थों का सार बतला दिया गया है । इसका विस्तार विशाल ग्रंथों से भयभीत होने वाले व्यक्तियों की प्रसन्नता के लिए नहीं किया गया है ।"

यायावर कुलोत्पन्न राजशेखर का मत है कि सम्पूर्ण विद्याओं का एकमात्र आधार (अर्थात् सङ्गमस्थल) काव्य पन्द्रहवाँ विद्यास्थान है, क्योंकि यह काव्य गद्य-पद्यमय होने के कारण, कवि का धर्म होने के कारण तथा हितोपदेशक होने से भी (सम्पूर्ण विद्या-स्थानों के वर्ण्य-विषय को कहने में पूर्ण सक्षम है) । वह (काव्य) शास्त्रों का अनुसरण करता हुआ चलता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'वार्त्ता कामसूत्रं शिल्पशास्त्रं दण्डनीतिरिति पूर्वैः सहाष्टादश विद्या-स्थानानि' इत्यपरे ।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या । "दण्डनीतिरेवैका विद्या" इत्यौशनसाः । दण्डभयाद्धि कृत्स्नो लोकः स्वेषु स्वेषु कर्मस्व-वतिष्ठते । "वार्ता दण्डनीतिर्द्वे विद्ये" इति बार्हस्पत्याः । वृत्तिविनयग्रहणं च स्थितिहेतुर्लोकयात्रायाः । "त्रयीवार्तादण्डनीतयस्तिस्रो विद्याः" इति मानवाः । त्रयी हि वार्तादण्डनीत्योरुपदेष्ट्री । "आन्वीक्षिकीत्रयीवार्ता-दण्डनीतयश्चतस्रो विद्याः" इति कौटिल्यः । आन्वीक्षिक्या हि विवेचिता त्रयी वार्त्तादण्डनीत्योः प्रभवति ।

तद्धि शास्त्राण्यनुधावतीति । तद्धि=काव्यं हि, शास्त्राण्यनुधावति=शास्त्राण्यनु-गच्छति । "शास्त्रपूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेष्वभिनिविशेत" इति स्वयमेव पूर्वकथनात् शास्त्रकाव्ययोरनुगन्तृभावः सुस्पष्टमेव ।

विद्यां विवेचयन्नाह—आन्वीक्षिकीति । आन्वीक्षिकी=प्रत्यक्षागमाभ्यामी-क्षितस्यान्वीक्षणमन्वीक्षा तया प्रवर्तत इत्यान्वीक्षिकी न्यायविद्या न्यायशास्त्रम् । त्रयी=ऋग्यजुःसामाख्यवेदत्रयी । अङ्गसहितेत्यध्याहार्यम् । वार्ता=कृषिपाशु-पाल्यावणिज्यात्मिका हि वार्ता विज्ञेया । औशनसाः=शुक्राचार्यमतानुगाः बार्हस्प-त्याः=बृहस्पतिमतानुयायिनः । लोकयात्रायाः=संसारप्रपञ्चस्य, स्थितहेतुः=स-ञ्चालन-कारणम् ।उपदेष्ट्री=नियामिका । प्रभवति=सञ्चालने समर्था भवति ।

कुछ आचार्यों का मत है कि पीछे बतलाई गई चौदह विद्याओं के साथ वार्ता, कामसूत्र, शिल्पशास्त्र तथा दण्डनीति (अर्थशास्त्र)–इन चार विद्याओं को मिलाकर अट्ठारह विद्यास्थान (अर्थात् विद्याएँ) हैं । (ये आचार्य चौदह के स्थान पर अट्ठारह विद्यास्थान मानते हैं) ।

(किन्हीं आचार्यों का मत है कि) आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति (अर्थात् अर्थशास्त्र)–ये चार (ही) विद्याएँ हैं । शुक्राचार्य के मत से एकमात्र दण्डनीति ही विद्या है । क्योंकि दण्ड के भय से सम्पूर्ण मानव-समुदाय अपने-अपने कर्मों के करने में सतर्क रहता है । बृहस्पति के मतानुयायी दो विद्या मानते हैं–१–वार्ता और २–दण्डनीति, क्योंकि वृत्ति (जीविका)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"पञ्चमी साहित्यविद्या" इति यायावरीयः । सा हि चितसृणामपि विद्यानां निष्यन्दः । आभिर्द्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम् ।

तत्र त्रयी व्याख्याता । द्विधा चान्वीक्षिकी पूर्वोत्तरपक्षाभ्याम् । अर्हद्बुद्धदन्तदर्शने लोकायतं च पूर्वः पक्षः । साङ्ख्यं न्यायवैशेषिकौ चोत्तरः । त इमे षट् तर्काः । तत्र च तिस्रः कथाः भवन्ति वादो, जल्पो, वितण्डा च ।

चतस्रो विद्या इति, कौटिल्यसिद्धान्तेऽधिकं योजयन्नाह—पञ्चमी साहित्यविद्येति । सर्वासां सारभूतत्वात् साहित्यं पञ्चमी विद्येति । निष्यन्दः=अन्तःसाररूपः आभिः=विद्याभिरित्यर्थः, धर्मार्थयोर्ज्ञानमेवासां विद्यात्वं वर्तते ।

तत्र=तासु विद्यासु, त्रयी=ऋग्यजुःसामवेदस्वरूपा वेदत्रयी, व्याख्याता=स्वरूपतो लक्षिता । आन्वीक्षिकी=तर्कविद्या, द्विधा=द्विभेदसम्पन्ना । अर्हद्बुद्धदन्तदर्शने=जैनबौद्धदर्शने, लोकायतम्=चार्वाकदर्शनम् लोके आयतं विस्तीर्णं मनोहरत्वादिति लोकायतमतिस्थूलदर्शनम् । षट् तर्काः=इमे षट् तर्कव्यपदेश्या इत्यर्थः। इति तर्कसाधारणलक्षणम् । तत्र=तर्केष्वित्यर्थः ।

और अनुशासन (विनयग्रहण)–ये दो ही लोक को व्यवस्थित रखने के कारण हैं । मनु के मतानुयायियों के अनुसार १–त्रयी, २–वार्ता और ३–दण्डनीति ये तीन विद्यायें हैं । (इनमें) त्रयी (अर्थात् वेद) वार्ता और दण्डनीति की उपदेशिका (सच्चालिका) है । कौटिल्य (चाणक्य) का मत है कि—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति ये चार विद्यायें हैं । (उनका कहना है कि) आन्वीक्षिकी (अर्थात् तर्कविद्या) से विवेचना की गयी ही त्रयी (अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद रूप त्रयी) वार्ता तथा दण्डनीति का उपदेश देने में समर्थ होती है ।

यायावर गोत्रोत्पन्न राजशेखर का मत है कि साहित्य-विद्या (उक्त चार विद्याओं के अतिरिक्त) पाँचवीं विद्या है । क्योंकि वह उक्त चारों विद्याओं का सार-तत्त्व है । इन विद्याओं के द्वारा धर्म तथा अर्थ का ज्ञान होता है, यही इनमें विद्यात्व है (अर्थात् यही इनकी सफलता है) ।

उन विद्याओं में त्रयी की व्याख्या की जा चुकी है (अर्थात् यह बतलाया जा चुका है कि त्रयी किसको कहते हैं) । आन्वीक्षिकी (अर्थात् तर्कविद्या) दो प्रकार की है–(क) पूर्वपक्ष तथा (ख) उत्तरपक्ष । पूर्वपक्ष में तीन दर्शन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्यस्थयोस्तत्त्वावबोधाय वस्तुतत्त्वपरामर्शो वादः । विजिगीषोः स्वपक्षसिद्धये छलजातिनिग्रहादिपरिग्रहो जल्पः । स्वपक्षस्यापरिग्रहिवी परपक्षस्य दूषयित्री वितण्डा ।

कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च वार्त्ता । आन्वीक्षिकीत्रयीवार्त्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डस्तस्य नीतिर्दण्डनीतिः । तस्यामायत्ता लोकयात्रेति

वादजल्पवितण्डासु वादमाह–**मध्यस्थयो**रिति । मध्यस्थयोः=वादिप्रतिवादिशास्त्रार्थनिर्णेतृत्वेनावस्थितयोः, **अवबोधाय**=तत्त्वज्ञानाय, **वस्तुतत्त्वपरामर्शः**—वस्तुतत्त्वस्य परामर्शः=विचार एव वाद इत्यर्थः । **विजिगीषोः**=वादकाले स्वपक्षस्य विजयमिच्छोः, **स्वपक्षसिद्धये**=स्वमतस्थापनाय, छलस्य, जातिनिग्रहस्य आदिपदादुपायान्तरस्यापि परिग्रहः स्वीकारो जल्प इत्यर्थः । वितण्डामाह–**स्वपक्षस्ये**ति । **अपरिग्रहिवी**=अनुपस्थापयन्ती, **दूषयित्री**=दूषिका, **वितण्ड्यते**=विहन्यते

हैं–(१) अर्हत् (जैन), (२) भदन्त (बौद्ध) तथा (३) लोकायत (चार्वाक) । उत्तरपक्ष में भी तीन दर्शन हैं–(१) सांख्य, (२) न्याय एवं (३) वैशेषिक । ये ही छः तर्क कहे जाते हैं । इन तर्कों में तीन प्रकार की कथायें होती हैं–(१) वाद, (२) जल्प और (३) वितण्डा ।

दोनों ओर के मध्यस्थों (निर्णायकों) को (अपने-अपने) तर्क का तत्वज्ञान कराने के लिये वस्तु तत्त्व (याथार्थ्य) का कथन ही वाद है । (प्रतिपक्षी पर) विजय प्राप्त करने की अभिलाषा वाले व्यक्ति के द्वारा छल, जाति एवं निग्रह-स्थान का आश्रय लेना जल्प कहा जाता है । अपने पक्ष को उपस्थित न करते हुए प्रतिवादी के पक्ष में दोष निकालना वितण्डा है ।

विशेष—दर्शन के उक्त सभी छः सम्प्रदाय संसार, आत्मा तथा शरीर आदि की तर्कपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करते हैं । अतः इन्हें तर्क कहा जाता है । किसी पदार्थ की सत्यता तथा असत्यता की परीक्षा के लिये ये षड्दर्शन तीन प्रकार के तर्कों का सहारा लेते हैं । ये तर्क हैं–वाद, जल्प तथा वितण्डा । इन तीनों को 'कथा' भी कहते हैं । जल्प के भेद हैं छल और जातिनिग्रह । इनकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्राणि । सामान्यलक्षणं चैषाम्–

सरितामिव प्रवाहास्तुच्छाः प्रथमं ययोत्तरं विपुलाः ।
ये शास्त्रसमारम्भा भवन्ति लोकस्य ते वन्द्याः ।।

परपक्षोऽनयाऽसौ वितण्डा ।

शास्त्राणां सामान्यलक्षणमाह––सरितामिवेति । सरिताम्=नदीनाम्, प्रवाहाः=स्रोतांसि, इव=यथा, प्रथमम्=पूर्वम्, तुच्छाः=स्वल्पाः, ययोत्तरम्=क्रमशः, विपुलाः=विशालाः, भाष्यादिभिरिति शेषः, ये शास्त्रसमारम्भाः=ये शास्त्राणामुपक्रमाः, ते, लोकस्य=जगतः, वन्द्याः=वन्दनीयाः, भवन्ति=जायन्ते । स्वल्पारम्भाणि क्रमशो वृद्धिङ्गतानि शास्त्राणि लोकप्रियाणि भवन्तीति भावः ।

परिभाषा इस प्रकार है–

छल–प्रतिपक्षी के विवक्षित अर्थ के विरुद्ध अर्थ की युक्ति के द्वारा सिद्धि करके उसके वचन को काटना छल है–"वचनविघातोऽर्थविकल्पोपपत्त्या छलम्" (गौतम सूत्र १ अ० २ आ० १० सूत्र) । यह छल तीन प्रकार का होता है–(१) वाक्छल (२) सामान्य छल तथा (३) उपचारच्छल "तत्त्रिविधं वाक्छलं सामान्यच्छलमुपचारच्छलं चेति ।" (गौ० १।२।११)

जाति–साधर्म्य और वैधर्म्य के द्वारा प्रतिपक्षी के विवक्षित अर्थ के विरुद्ध विषय का उपस्थापन जाति है । इसे जात्युत्तर भी कहते हैं–"साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्यवस्थानं जातिः (वही १९) ।

निग्रह–प्रतिपक्षी के विवक्षित अर्थ के विपरीत अर्थ को समझना और उसके विवक्षित अर्थ को न समझना निग्रह या निग्रहस्थान है––"विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् ।" (वही १९) ।

कृषि, पशुपालन तथा व्यापार को वार्ता कहते हैं । आन्वीक्षिकी, त्रयी तथा वार्ता इन तीनों विद्याओं का योग-क्षेम (प्राप्ति तथा रक्षा) का साधन दण्ड ही है । दण्ड की नीति को दण्डनीति कहते हैं । संसार की स्थिति तथा सच्चालन दण्डनीति पर ही आश्रित है । ये ही शास्त्र हैं । सम्प्रति इन शास्त्रों का सामान्य (अर्थात् सभी शास्त्रों पर लागू होने वाला) लक्षण दिया जा रहा है–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्रादिभिश्चैषां प्रणयनम् । तत्र सूत्रणात् सूत्रम् । यदाहुः —
"अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रकृतो विदुः ।।"

सूत्रादिभिरिति । एषाम्=शास्त्राणाम्, सूत्रादिभिः=सूत्रैर्वृत्तिभिर्वार्तिकभाष्यैश्चेति, **प्रणयनम्**=निर्माणं विपुलीभावश्च जायते । तत्र=सूत्रादिषु, सूत्रणात्=पदार्थस्य वेष्टनात् सूत्रम्, यत्=यथा, आहुः=कथितवन्तः, व्यासचरणा अग्निपुराण इति शेषः ।

अग्निपुराणकृतं सूत्रलक्षणमाह– अल्पाक्षरमिति । सूत्रकृतः=सूत्ररचयितारो महर्षयः, सूत्रम्, अल्पाक्षरम्–अल्पानि=स्वल्पानि, अक्षराणि=वर्णाः यस्मिन् तत्, असन्दिग्धम्–सन्देहवर्जितम्, सारवत्=अर्थगाम्भीर्यात्मकसारसहितम्, विश्वतोमुखम्=चतुरस्रम्, सर्वत्र सुलभान्वयमिति भावः, निर्माणकालेऽपवादबाधादिकं पुरस्कृत्य रचितमिति भावः, अस्तोभम्=स्तम्भनं स्तोभस्तद्रहितमित्यर्थः, अर्थप्रतीतिप्रतिबन्धकविरहितमिति यावत् अथवा निरर्थकाक्षररहितम्, च=तथा, अनवद्यम्=निर्दोषम्, विदुः=कथितवन्तः ।

जैसे नदियों के प्रवाह प्रारम्भ में स्वल्पकाय होते हैं किन्तु क्रमशः विस्तृत होते जाते हैं, उसी प्रकार शास्त्रों के आरम्भ भी पहले अल्प तथा बाद में उत्तरोत्तर विपुल हो जाते हैं। ऐसे शास्त्र सभी लोगों के द्वारा वन्दनीय हुआ करते हैं ।

विशेष—यहाँ ग्रंथकार शास्त्रों के विस्तार-क्रम को बतला रहे हैं। शास्त्रों का आरम्भ सूत्रशैली आदि के रूप में पहले होता है और बाद में वह भाष्य व्याख्याओं आदि के द्वारा विशाल बन जाता है। स्वल्प रूप में आरम्भ शास्त्र का भाष्य आदि के द्वारा विशालकाय होना उसकी लोकप्रियता का सूचक है।

सूत्र, वृत्ति, भाष्य तथा टीका आदि के द्वारा इन शास्त्रों का निर्माण एवं विस्तार होता है। (अब इन सूत्र आदि के लक्षण बतलाये जा रहे हैं) अत्यन्त विस्तृत भाव को छोटे वाक्य में कहना सूत्र है। जैसा कि (अग्निपुराण में) कहा भी गया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्राणां सकलसारविवरणं वृत्तिः । सूत्रवृत्तिविवेचनं पद्धतिः । आक्षिप्य भाषणाद्भाष्यम् । अन्तर्भाष्यं समीक्षा । अवान्तरार्थविच्छेदश्च सा । यथा-

---

वृत्त्यादीनां लक्षणं कुर्तुमुपक्रमते—**सूत्राणामिति** । सूत्राणामिति सम्बन्धे षष्ठी । तेन च सूत्रसम्बन्धिनः सकलस्य सारांशस्य यत्र विवरणम्=विवेचनं वर्तते सा वृत्तिरिति निगद्यते । पद्धतिमाह—**सूत्रेति** । **सूत्रवृत्तिविवेचनम्**—सूत्रस्य वृत्तेश्च विवेचनम्=विचारो यत्र वर्तते सा पद्धतिः । भाष्यमाह—**आक्षिप्येति**—आक्षिप्य=पूर्वपक्षत्वेन शङ्कामुत्थाप्य, भाषणम्=सिद्धान्तपक्षत्वेनोत्तरकथनं यत्र तद्भाष्यम् । समीक्षापरिभाषामाह—**अन्तरिति** । भाष्यस्य अन्तः, अन्तर्भाष्यम् । भाष्ये

अन्वयः—सूत्रकृतः, सूत्रम्, अल्पाक्षरम्, असन्दिग्धम् सारवत् विश्वतो मुखम्, अस्तोभम् च, अनवद्यम् विदुः ।

शब्दार्थः—सूत्रकृतः=सूत्रकर्ता महर्षियों ने, सूत्रम्=सूत्र को, अल्पाक्षरम्=अल्प अक्षरों वाला, असन्दिग्धम्=सन्देह-रहित, सारवत्=अर्थ-गम्भीरता रूप सार से गर्भित, विश्वतो मुखम्=व्यापक, चतुरस्र, अस्तोभम्=अर्थप्रतीति की बाधा से रहित अथवा निरर्थक अक्षर से रहित, च=और, अनवद्यम्=सकल दोष-वर्जित, विदुः=बतलाया है ।

सूत्रकर्ता महर्षियों ने सूत्र को अल्प अक्षर वाला, सन्देह-रहित, अर्थ-गम्भीरता रूप सार से गर्भित, व्यापक, अर्थ-प्रतीति की बाधा से रहित (अथवा निरर्थक अक्षर से रहित) और सकलदोष वर्जित बतलाया है ।

विशेष—अस्तोभम्—जो वर्ण या वर्ण-समूह किसी पद या वाक्य में निरर्थक हुआ करते हैं, उन्हें "स्तोभ" कहते हैं । सामवेद में इस तरह के बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं । हुँ, फट् आदि स्तोभ के उदाहरण कहे जा सकते हैं ।

सूत्र सम्बन्धी सकल सारांश का विवरण प्रस्तुत करने वाली व्याख्या 'वृत्ति' कही जाती है । सूत्र और वृत्ति की विवेचना का नाम 'पद्धति' है । शंकाओं की उद्भावना करके उनका खण्डन करते हुए विस्तृत व्याख्या करना 'भाष्य' कहलाता है । भाष्य में निहित गम्भीर अर्थों का विवेचन 'समीक्षा' है । भाष्य के अन्तर्गत वर्तमान अवान्तर अर्थों का अलग-अलग विभाग भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्भवमर्थस्य टीकनं टीका । विषमपदभञ्जिका पञ्जिका । अर्थप्रदर्शन-कारिका कारिका । उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्त्तिकमिति शास्त्रभेदाः ।

भवति प्रथयन्नर्थं लीनं समभिप्लुतं स्फुटीकुर्वन् ।

अल्पमनल्पं रचयन्ननल्पमल्पं च शास्त्रकविः ॥

निहितानां गम्भीरविषयाणां विवेचना समीक्षेति । तस्या एव परिभाषान्तरमाह– **अवान्तरेत्यादिना** । **अवान्तरार्थविच्छेदः**—अवान्तरार्थस्य=सिद्धान्तितार्थविवेचनप्रसंगे आगतस्यावान्तरार्थस्य विच्छेदः पृथक्करणमपि,सा =समीक्षेत्यर्थः । टीकामाह– **यथासम्भवमिति । यथासम्भवम्**—सम्भावनामतिक्रम्येत्यर्थः, **अर्थस्य=** शब्दार्थस्य, **टीकनम्**=सरलशब्दैः प्रकाशनम् टीकेति तात्पर्यम् । **पञ्जिकामाह**— **विषमेति । विषमपदभञ्जिका**—विषमपदानाम्=कठिनशब्दानाम्—भञ्जिका= पार्थक्यप्रदर्शिका पञ्जिका । करिकामाह–**अर्थेति**। सूत्रार्थप्रदर्शनकारिका छन्दोवद्धा वाक् कारिकेति । वार्तिकमाह–**उक्तेति** । उक्तानाम् सूत्रे कथितानामनुक्तानाम्=अकथितानां दुरुक्तानाम्=कठिनशब्दैः कथितानाम् अर्थानां चिन्ता=विचारो यत्र तद्वार्तिकमित्यर्थः ।

शास्त्रज्ञस्य कवेः प्रभावं प्रदर्शयति—**भवतीति** । **शास्त्रकविः**—शास्त्राणां ज्ञाता शास्त्रविषयरचनापरो वा कविः, **लीनम्**=गूढं वाच्यार्थम्, **प्रथयन् भवति=**

'समीक्षा' ही है । (वृत्ति और भाष्य के प्रायः सभी) अर्थ का यथासम्भव सरल शब्दों के द्वारा प्रकाशन 'टीका' है । दुरूह पदों के अर्थ को प्रकाशित करके उन्हें अलग-अलग प्रदर्शित करना 'पञ्जिका' है। सूत्र के अर्थ को (छन्दोवद्ध) प्रदर्शन 'कारिका' है । (सूत्र में) कहे गये, न कहे गये तथा कठिन शब्दों के द्वारा कहे गये अर्थ (शब्दार्थ) का विवेचन वार्तिक कहा जाता है । ये ही शास्त्रों के भेद हैं ।

(लोकोत्तरबुद्धिशाली) शास्त्रकवि (अर्थात् शास्त्रीय विषयों पर रचना करने वाला अथवा शास्त्रज्ञ कवि) गूढ़ अर्थ को प्रकट करता है, सन्दिग्ध अर्थ को सुस्पष्ट करता है, संक्षिप्त अर्थ को विस्तृत बनाता है और विस्तृत अर्थ को संक्षिप्त करता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्रैकदेशस्य प्रक्रिया प्रकरणम् । अध्यायादयस्त्ववान्तरविच्छेदाः । कृतिभिः स्वतन्त्रतया प्रणीता इत्यपरिसङ्ख्येया अनाख्येयाश्च ।

शब्दार्थयोर्यावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या । उपविद्यास्तु चतुःषष्टिः । ताश्च कला इति विदग्धवादः । स आजीवः काव्यस्य । तमौपनिषदिके वक्ष्यामः ।

प्रथयति प्रकटयतीत्यर्थः, समभिप्लुतम्=समन्तादभिप्लुतं सन्दिग्धमर्थमित्यर्थः, स्फुटीकुर्वन्=प्रटकयन्, भवतीति शेषः; अल्पम्=संक्षिप्तमर्थम्, अनल्पम्=विस्तृतम् रचयन्=कुरुत इत्यर्थः; अनल्पमल्पञ्च कर्तुं प्रवीणो भवतीत्यर्थः । काव्यनिर्माणे प्रावीण्यार्थं शास्त्रपाण्डित्यमावश्यकमिति भावः ।

अथ प्रकरणमाह–शास्त्रैकदेशस्येति । शास्त्रस्यैकभागः प्रकरणपदेन व्यपदिश्यत इत्यभिप्रायः । विच्छेदाः=विभागाः । कृतिभिः= विद्वद्भिः ।

अधुना साहित्यविद्यां लक्षयन्नाह–शब्दार्थयोरिति । शब्दार्थयोः=वाच्यवाचकयोः, यथावत्=यथोचितम् इत्यर्थः, सहभावेन=साहित्येन वर्तमाना विद्या साहित्यविद्या निगद्यते । शब्दार्थौ सहितौ काव्यमित्यभियुक्तोक्तिरेव काव्यपरिभाषात्वेनात्र कविना स्वीकृता । ताः=उपविद्या एव कलाशब्देन व्यपदिश्यन्त इति भावः । सः=विदग्धवादः, आजीवः=जीवनम् ।

विशेष—शास्त्रकवि काव्यरचना में सिद्धहस्त होता है। वह पूरे सामर्थ्य के साथ काव्य-निर्माण करता है। उसकी निपुणता के कारण शब्दों के गूढ़ अर्थ भी मोती की तरह चमकने लगते हैं। संदिग्ध अर्थ सुस्पष्ट हो जाते हैं। संक्षेप और विस्तार तो उसके बाएँ हाथ का खेल होता है। कहने का भाव यह है कि कवि को पहले शास्त्रों का ज्ञाता और उसके बाद कवि होना चाहिए।

शास्त्र के किसी एक भाग की प्रक्रिया (कार्य-कलाप) का नाम प्रकरण है। अध्याय आदि (शास्त्र के) अवान्तर विभाग हैं। विद्वानों ने स्वतन्त्र रूप से इन (अध्याय) आदि की रचना की है। अतः ये असंख्य और अवर्णनीय हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्यनन्तोऽभियुक्तानामत्र संरम्भविस्तरः ।
त्यक्तो निपुणधीगम्यो ग्रन्थगौरवकारणात् ।।

।। इति राजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे
द्वितीयोऽध्यायः शास्त्रनिर्देशः ।।

अध्यायमुपसंहरति–इत्यन्त इति । अभियुक्तानाम्=विदुषाम्, अत्र=शास्त्रे, इति=इत्थम्, संरम्भविस्तरः—संरम्भे=प्रकरणाध्यायपर्यालोचनादौ यो विस्तरः सोऽनन्तः–अपरिसंख्येय आस्ते, सः निपुणधीगम्यः—निपुणा= प्रवीणा धीः= बुद्धिर्येषां तैर्गम्यः=सुज्ञेयः, अतो ग्रन्थविस्तारभयात् त्यक्तः=परित्यक्तः ।

।। इति शाण्डिल्यगोत्रोद्भवेन रमाशङ्करत्रिपाठिना विरचितायां
काव्यमीमांसाकौमुद्यां शास्त्रनिर्देशो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

शब्द और अर्थ का (अर्थात् वाचक और वाच्य का) जिसमें उचित सहभाव हो उसे 'साहित्यविद्या' कहते हैं । (अर्थात् उचित रूप से सम्मिलित शब्द तथा अर्थ का ही नाम साहित्य है) । उपविद्याएँ चौसठ (६४) हैं । विदग्ध-जन इन उपविद्याओं को कला कहते हैं । यह विदग्ध-जनों का कथन काव्य का जीवन है (अर्थात् ये कलाएँ काव्य का जीवन हैं) । इसका विवेचन हम औपनिषदिक प्रकरण में करेंगे ।

इस प्रकार विद्वानों के (द्वारा रचित) इन शास्त्रों में (अत्र) प्रकरण, अध्याय तथा पर्यालोचना आदि का अत्यन्त विस्तार है । उसे चतुर बुद्धि वाले व्यक्ति स्वयं अपनी बुद्धि से समझ सकते हैं । ग्रंथ-विस्तार के भय से मैंने उन्हें छोड़ दिया है ।

।।राजशेखर के द्वारा विरचित काव्यमीमांसा के कविरहस्य नामक
प्रथम अधिकरण में शास्त्रनिर्देश नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीय अध्याय

काव्य-पुरुष की उत्पत्ति

एवं गुरुभ्यो गिरः पुण्याः पुराणीः शृणुमः स्म, यत्किल धिषणं शिष्याः कथाप्रसङ्गे पप्रच्छुः, कीदृशः पुनरसौ सारस्वतेयः काव्यपुरुषो वो गुरुः ? इति । स तान् बृहताम्पतिरूचे ।

पुरा पुत्रीयन्ती सरस्वती तुषारगिरौ तपस्यामास । प्रीतेन मनसा तां विरिञ्चः प्रोवाच-पुत्रं ते सृजामि ।

काव्यपुरुषस्योत्पत्ति प्रवृत्तिञ्च वर्णितुमुपक्रमते–एवमित्यादिना । पुराणीः= प्राचीनाः, धिषणम्=बृहस्पतिम् । सारस्वतेयः=सरस्वतीपुत्रः । बृहताम्पतिः= बृहस्पतिः ।

पुरा पूर्वकाले, पुत्रीयन्ती=पुत्रं कामयमाना, सरस्वती=वाग्देवी, तुषार-गिरौ=हिमालये, तपस्यामास=तपस्यांचकार । विरिञ्चः=ब्रह्मा, (विरिञ्चः विरिञ्चिः विरञ्चः विरञ्चिः' इति चत्वारोऽपि ब्रह्मपर्याया इति शब्दानुशासने हेमचन्द्रः) पुत्रं ते सृजामि–ते त्वयि पुत्रकारणं बीजं निषिञ्चामीत्यभिप्रायः ।

हम गुरुजनों से प्राचीन तथा पवित्र वाणी सुनते आये हैं कि एक बार बृहस्पति के शिष्यों ने बातचीत के प्रसंग में उनसे पूछा कि आपके गुरु, सरस्वती के पुत्र ये काव्य-पुरुष कौन हैं ? बृहस्पति ने (काव्य-पुरुष की उत्पत्ति तथा उसके चरित्र के विषय में) अपने उन शिष्यों से इस प्रकार कहा—

प्राचीन काल में सरस्वती ने पुत्र की कामना से हिमालय पर्वत पर तपस्या की । (उसकी तपस्या से) प्रसन्नहृदयवाले ब्रह्मा ने कहा—"मैं तुम्हारे लिये पुत्र की रचना करता हूँ (अर्थात् मैं तुम्हारे अन्दर गर्भाधान कर दे रहा हूँ । इससे निश्चय ही पुत्र की उत्पत्ति होगी) ।

Nepal Sanskrit University, Valmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथैषा काव्यपुरुषं सुषुवे। सोऽभ्युत्थाय सपादोपग्रहं छन्दस्वतीं वाचमुदचीचरत्—

यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते।
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ ॥

अथ=ब्रह्मणः कथनानन्तरमित्यर्थः, सा=सरस्वती, सुषुवे=जनयामास। सपादोपग्रहम्=पादाभिवन्दनपूर्वकं छन्दस्वतीम्=छन्दोवद्धाम्, वाचम्=वाणीम्।

तस्यैव वचनमाह—यदेतदिति। हे अम्ब=हे मातः सरस्वति, एतत्=पुरतो दृश्यमानम्, वाङ्मयम्=शब्दात्मकम्, विश्वम्=जगत्, यत्=येनेत्यर्थः,अर्थमूर्त्या=अर्थभावेन, विवर्तते=विवर्तरूपेण प्रकटीभवति, सः=जगद्विदितः, अस्मि=इदं विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययं वर्तते अहमित्यर्थः, काव्यपुमान्=काव्यपुरुषः, तावकौ=त्वदीयौ, पादौ=चरणौ,वन्देय=नमस्कुर्याम्॥ अत्र शब्दार्थौ मिलित्वैव काव्यमिति प्राचामाचार्याणां सिद्धांतः प्रकारान्तरेण समर्थितः। "अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः" इति वाक्यपदीयेऽपि।

तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होने पर सरस्वती ने काव्य-पुरुष को पैदा किया। उत्पन्न होते ही उठकर उस काव्य-पुरुष ने (माता के) चरणों का स्पर्श करते हुए छन्दोवद्ध भाषा में कहा—

विशेष—इस अध्याय में कवि ने काव्य की उत्पत्ति का वर्णन किया है। उन्होंने इसे भारत के चतुर्दिक फैले आख्यानों के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है। यही कारण है कि वे यहाँ इतिहास के यथार्थ तथ्यों से हटकर, पुराण की भाँति, कल्पित आख्यानों को अपना आधार बनाये हैं। कल्पित आख्यान कभी भी इतिहास की ठोस शिला नहीं बन सकते। राजशेखर के द्वारा वर्णित काव्य-पुरुष सारस्वतेय की यह कथा कुछ भिन्नताओं के साथ वायुपुराण, महाभारत तथा हर्षचरित में भी उपलब्ध है।

"हे मातः, दृश्यमान समस्त यह शब्दरूप जगत् जिसके द्वारा अर्थरूप में परिणत हो जाता है; वही काव्य-पुरुष मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना कर रहा हूँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तामाम्नायदृष्टचरीमुपलभ्य भाषाविषये छन्दोमुद्रां देवी ससम्मदमङ्क-पर्यङ्कनादाय तमुदलापयत् । "वत्स सच्छन्दस्काया गिरः प्रणेतर्वाङ्मयमा-तरमपि मातरं मां विजयसे । प्रशस्यतमं चेदमुदाहरन्ति यदुत 'पुत्रात्पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म, इति । त्वत्तः पूर्वे हि विद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम् । त्वदुपज्ञमथातः छन्दस्वद्वचः प्रवर्त्स्यति । अहो श्लाघनीयोऽसि ।

शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं

ताम्=काव्यपुरुषनिगदितामित्यर्थः, आम्नायदृष्टचरीम्—आम्नायेषु=वेदेषु दृष्टचरीम्=अद्यावधिपर्यन्तं दृष्टाम् । छन्दोमुद्राम्=छन्दसि निबद्धाम् ससम्मदम्-सहर्षम्, अङ्कपर्यङ्कनम्=क्रोडेनेत्यर्थः, उदलापयत्=प्रशशंस । सच्छन्दस्कायाः छन्दोबद्धायाः, गिरः=वाण्याः, वाङ्मयमातरम्=शब्दशास्त्रजननीम्, पूर्वे=पूर्वकाले जाताः, ददृशुः=विरचितवन्तः । त्वदुपज्ञम्=त्वया प्रथममारचितमित्यर्थः, छन्दस्वद्वचः=छन्दोनिबद्धं वचनमित्यर्थः । श्लाघीयः=प्रशंसनीयः ।

केवल वेदों में ही उपलब्ध इस प्रकार की छन्दोमयी वाणी को भाषा (बोल-चाल की संस्कृत भाषा) में देखकर सरस्वती बड़ी प्रसन्नता के साथ उस काव्य-पुरुष बालक को अपनी गोद में उठाकर दुलारती हुई बोलीं—हे बेटा, हे श्लोकमय वाणी को बनाने वाले, वाङ्मय की जननी तथा अपनी माता मुझको भी तुमने जीत लिया (अर्थात् हे पुत्र, यद्यपि मैं सम्पूर्ण वाङ्मय की जननी हूँ, परन्तु तुमने इस प्रकार छन्दोबद्ध भाषा से आज मुझ पर भी विजय प्राप्त कर ली है) । (विद्वान् लोग) यह एक अत्यन्त प्रशंसनीय बात कहते हैं कि—"पुत्र से पराजित होना द्वितीय पुत्र-जन्म के समान है ।" तुमसे पहले के विद्वानों ने केवल गद्य को ही देखा (रचा) था, पद्य को नहीं । अतः इस छन्दोबद्ध वाणी के प्रथम प्रवर्तक तुम्हीं होओगे । (अर्थात् छन्दोमयी वाणी को लोक में प्रचलित करने का श्रेय तुम्हें ही प्राप्त होगा) । तुम सचमुच प्रशंसनीय हो ।

शब्द और अर्थ तुम्हारे शरीर हैं । संस्कृत (भाषा) मुख है । प्राकृत भाषायें भुजा हैं । अपभ्रंश (भाषा) जाँघ है । पैशाची (भाषा) दोनों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पादौ, उरो मिश्रम् । समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि । उक्तिचणं च ते वक्षो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तरप्रवहिलिकादिकं च वाक्केलिः, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति । भविष्यतोऽर्थस्याभिधात्री श्रुतिरपि भवन्तमभिष्टौति–

चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥

काव्यपुरुषशरीरं वर्णयन्नाह – ते=तव, शब्दार्थौ=वाच्यवाचकौ, शरीरम्=वपुः । शब्दार्थौ काव्यमिति चात्र निर्दिष्टम् । मिश्रम्=प्राकृतावान्तरभाषामेलनादिति मिश्रम् । प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिकम् – प्रश्नश्चोत्तरं च तत् प्रश्नोत्तररूपं काव्यमित्यर्थः । अथवा य एव प्रश्नः स एव पदच्छेदसामर्थ्येनोत्तरं यत्र तत् । प्रवह्लिकादिकम्=प्रहेलिकादिकमित्यर्थः । भविष्यतः=भाविनः, अर्थस्य=वस्तुनस्तत्त्वस्य वेति । अभिधात्री=प्रतिपादिका ।

पैर हैं और मिश्रित भाषायें तुम्हारा वक्षःस्थल हैं। तुम सम, प्रसन्न, मधुर, उदार और ओजस्वी हो; (अर्थात् समता, प्रसन्नता, माधुर्य, औदार्य और ओज तुम्हारे गुण हैं) तुम्हारी वाणी उत्कृष्ट है। रस तुम्हारी आत्मा है। छन्द तुम्हारे रोयें हैं। प्रश्नोत्तर रूप (काव्य) तथा प्रहेलिका (पहेली) आदि तुम्हारे वाग्विनोद हैं। अनुप्रास एवं उपमा आदि अलंकार तुम्हें अलंकृत करते हैं। भावी अर्थ को बतलाने वाली श्रुति भी आपकी प्रशस्ति गाती है।

अन्वयः—अस्य, चत्वारि, शृङ्गाः, त्रयः, पादाः, द्वे, शीर्षे, (तथा) अस्य, सप्तहस्तासः, (सन्ति); (एवम्भूतः) त्रिधा, बद्धः, वृषभः, महोदेवः, रोरवीति, मर्त्यान्, आविवेश ।

शब्दार्थः—अस्य=इस (काव्य-पुरुष) को, चत्वारि=चार, शृङ्गाः=सींगें, त्रयः=तीन, पादाः=पैर, द्वे=दो, शीर्षे=शिर, (तथा=और), अस्य=इसके, सप्तहस्तासः=सात हाथ, (सन्ति=हैं); (एवम्भूतः=ऐसा), त्रिधा=तीन प्रकार से, बद्धः=बँधा हुआ, वृषभः=वर्षणकारी, महो देवः=महिमाशाली देव, रोरवीति=शब्द करता हुआ, मर्त्यान्=मनुष्योंमें, आविवेश=आकर प्रविष्ट हुआ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"तथापि संवृणु प्रगल्भस्य पुंसः कर्म बालोचितं चेष्टस्व"

असौ ऋगत्र काव्यपुरुषपरतया व्याख्यायते—चत्वारीति । अस्य=काव्यपुरुषस्येत्यर्थः, चत्वारि=चत्वारो वर्णा इत्यर्थः शृङ्गाः=विषाणस्थानीयाः सन्ति; त्रयः=त्रीणि स्थानानीत्यर्थः, पादा=चरणस्थानीयानि सन्ति, द्वे=द्विविधः काकुरित्यर्थः, शीर्षे=शीर्षस्थानीयोऽस्ति । तथा अस्य=काव्यपुरुषस्येत्यर्थः,सप्तहस्तासः= सप्तस्वराः सप्तहस्तस्थानीयाः सन्ति; एवम्भूतस्त्रिधा=त्रिप्रकारैः, मन्दमध्योच्चस्वरैरित्यर्थः, बद्धः=उच्चरितः सन्, वृषभः वर्षणकारी, सन्तर्पक इति यावत्, महोदेवः=महिमाशाली देवः, मर्त्यान्=मानवेषु, आविवेश=प्रविष्ट इत्यर्थः । असौ ऋग् ऋग्वेदे तृतीयेऽष्टकेऽष्टमाध्याये दशममण्डले तृतीये सूक्ते वर्तते । सायणभाष्ये, निरुक्ते, महाभाष्ये पस्पशाह्निके चास्याः परस्परं विलक्षणा एवार्थाः कृताः सन्ति ।

अर्थः – इस काव्य-पुरुष की (चार वर्ण रूपी) चार सींगे हैं, (तीन स्थान रूपी) तीन पैर हैं, (दो काकुरूप) दो सिर हैं और इसके (सात स्वर रूप) सात हाथ हैं। ऐसा (मन्द, मध्य तथा उच्च स्वरों से) तीन प्रकार से बँधा हुआ इच्छापूरक महिमाशाली देव मनुष्यों में आकर प्रविष्ट हुआ ।

विशेष—यह मन्त्र ऋग्वेद (३-८-१०-३) में आया है। भिन्न-भिन्न शास्त्रकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से प्रकरणवश इसका अलग-अलग अर्थ किया है। वेदभाष्यकार सायण ने इसका अर्थ यज्ञपरक किया है। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इसका अर्थ व्याकरण की ओर लगाया है। भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र के सत्रहवें अध्याय में इसका अर्थ काव्यपरक किया है। भरत की ही व्याख्या राजशेखर को भी अभिमत है। अतः यहाँ इसका अर्थ काव्यपरक किया गया है। भरत की व्याख्या के लिये देखिये नाट्यशास्त्र का १७ वाँ अध्याय ।

"फिर भी, प्रौढ़ पुरुष की भाँति इस अपने व्यवहार को समेट लो तथा नवजात बालक की भाँति चेष्टाएँ करो ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति निगद्य निवेश्य चैनमनोकहाश्रयिणि गण्डशैलतलतल्पे स्नातुमभ्रगङ्गां जगाम ।

तावच्च कुशान् समिधश्च समाहर्त्तुं निःसृतो महामुनिरुशनाः परिवृत्ते पूषण्युष्मोपप्लुतं तमद्राक्षोत् । कस्यायमनाथो बाल इति चिन्तयन्स्वमाश्रमपदमनैषीत् ।

क्षणादाश्वस्तश्च स सारस्वतेयस्तस्मै छन्दस्वतीं वाचं समचारयत् । अकस्माद्विस्मापयन्स चाभ्युवाच—

तथास्तु लोकव्यवहारसिद्धचर्थं लोकानुरूपमेव वर्तनमावश्यकमिति तमादिदेश—तथापीति । संवृणु=गोपाय । प्रगल्भस्य=प्रौढस्य, पुंसः=पुरुषस्य, कर्म=चरितम्, बालोचितम्=शिशुसुलभम्, शिशुयोग्यमित्यर्थः ।

इति=इत्थम्, निगद्य=उपदिश्य, एवम्=बालकम् अनोकहाश्रयिणि—अनोकहम्=वृक्षमाश्रयते तस्मिन्, गण्डशैलतलतल्पे—गण्डशैलस्य=गिरेश्च्युतस्य स्थूलोपलस्य तलमेव तल्पम्=शय्या तत्र, निवेश्य=शाययित्वा, अभ्रगङ्गाम्=आकाशगङ्गाम् ।

उशनाः=शुक्राचार्यः, पूषणि=सूर्ये, परिवृत्ते=अपरस्यां दिश्यवलम्बिते सति, ऊष्मोपप्लुतम्=सूर्यतापविह्वलम्, तम्=बालकमित्यर्थः ।

क्षणात्=अल्पकालेन, आश्वस्तः=प्रकृतिमापन्नः, स सारस्वतेयः, तस्मै=उशनसे, छन्दस्वतीम्=छन्दोवद्धाम्, वाचम्=वाणीम्, समचारयत्=सञ्चारितवानित्यर्थः । विस्मापयन्=स्वयं विस्मितः परानपि आश्चर्यचुम्बितान् कुर्वन्, उवाच=कथितवान् ।

ऐसा कहकर (सरस्वती) उस बालक को वृक्ष की छाया में अवस्थित, पर्वत से नीचे खिसक कर गिरे हुए प्रस्तर खण्ड रूपी शय्या पर सुला कर स्नान करने के लिए आकाशगङ्गा को चली गई ।

इसी बीच कुशाओं और यज्ञीय लकड़ियों (समिधाओं) को लाने के लिए महामुनि उशना (शुक्राचार्य) निकले । उन्होंने सूर्य के दूसरी दिशा की ओर लटक जाने के कारण (लगते हुए घाम की) गर्मी से व्याकुल उस बालक को देखा । 'यह अनाथ बालक किसका है'—यह सोचते हुए वे उसे अपने आश्रम में लाए ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम् ।
हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥ इति ॥

तत्पूर्वकमध्येतृणां च सुमेधस्त्वमादिदेश । ततः प्रभृति तमुशनसं सन्तः कविरित्याचक्षते । तदुपचाराच्च कवयः कवय इति लोकयात्रा । कविशब्दश्च कवृ वर्ण इत्यस्य धातोः काव्यकर्मणो रूपम् । काव्यैकरूपत्वाच्च सारस्वतेयेऽपि काव्यपुरुष इति भक्त्या प्रयुञ्जते ।

यदुवाचोशनास्तदाह– या दुग्धेति । कविदोग्धृभिः—कवय एव दोग्धारस्तैः, अन्वहम्=प्रतिदिनम्, दुग्धापि=कृतदोहनापि, या सरस्वती, न दुग्धा इव—अकृतदोहनेव, प्रतिभातीति शेषः । सूक्तिधेनुः—सूक्तीनाम्=शोभनोक्तीनां धेनुः=सुरधेनुस्वरूपा, सा सरस्वती, नः=अस्माकम्, हृदि=हृदये, सन्निधत्ताम्=सान्निध्यं करोतु । अत्र सरस्वती एव कामधेनुः, कवय एव दोग्धारस्तथा शब्दार्थानां समूह एव दुग्धमिति जानन्तु सुधियः ।

तन्मन्त्रस्य फलं प्रदर्शयन्नाह–तत्पूर्वकमिति । तत्पूर्वकम्=उशनसोच्चरितस्य

(आश्रम के प्रशान्त तथा पावन वातावरण से) क्षण भर में ही आश्वस्त हुआ वह बालक सारस्वतेय छन्दोमयी वाणी का सञ्चार उन मुनि के भीतर करा दिया । (वाणी के उस सञ्चार से स्वयं आश्चर्यचकित तथा) दूसरों को भी विस्मित कराते हुए उशना मुनि अकस्मात् बोल उठे–

"कविगणरूपी दूध दुहने वालों के द्वारा नित्य दुही जाने पर भी जो न दुही गई के समान है, सूक्तियों की कामधेनु वह सरस्वती देवी हमारे हृदय में निवास करे ॥"

उशना के द्वारा उच्चरित इस श्लोक के पठन से (तत्पूर्वकम्) अध्येताओं में शोभन बुद्धि के उदय का आशीर्वाद (सारस्वतेय ने) दिया । तभी से सज्जन लोग उन उशना को 'कवि' कहने लगे । यही कारण है कि कविता करने वाले अन्य लोग संसार में उपचार (लक्षणा) के कारण कवि कहे जाते हैं । कवि शब्द 'कवृ वर्णे' इस धातु से बनता है । इसका अर्थ है काव्य-कर्म (अर्थात् काव्य-रचना) । काव्यमय होने के कारण सरस्वती के उस पुत्र को भी लाक्षणिक रूप से काव्यपुरुष कहा जाने लगा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततश्च विनिवृत्ता वाग्देवी तत्र पुत्रमपश्यन्ती मध्येहृदयं चक्रन्द । प्रसङ्गागतश्च वाल्मीकिर्मुनिवृषा सप्रश्रयं तमुदन्तमुदाहृत्य भगवत्यै भृगुसूते-राश्रमपदमदर्शयत् ।

सापि प्रस्नुतपयोधरा पुत्रायाङ्कपालीं ददाना शिरसि च चुम्बन्ती स्वस्तिमता चेतसा प्राचेतसायाऽपि महर्षये निभृतं सच्छन्दांसि वचांसि प्रायच्छत् ।

श्लोकस्य पुनः पुनः पाठादित्यर्थः । अध्येतृणाम्=अभ्यासं कुर्वताम्, सुमेधस्त्वम्=शोभनबुद्धिशालित्वम् आदिदेश=अनुशशास । अत्र सारस्वतेय इत्यध्याहार्यम् । यः पूर्वमेतत् पद्यमध्येष्यते स सुमेधाः सम्पत्स्यत इति भावः । उपचारात्=लक्षणावशात्, लक्षणयेत्यर्थः । भार्गवादन्यत्र कविशब्दो लक्षणयैव प्रयुज्यते इत्यभिप्रायः । काव्य-कर्मणः – धातोरित्यस्य विशेषणमिदम् । काव्यं कर्म यस्येति तस्माद्धातोरित्यर्थः । सारस्वतेय काव्यशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमाह–काव्यै रूपत्वाच्च=काव्येन सह तादात्म्यापन्नत्वादित्यर्थः, भक्त्या=लक्षणया ।

ततः=स्नानं कृत्वेत्यर्थः, मध्येहृदयम्=हृदयस्य मध्ये । 'पारे मध्ये षष्ठ्या वेति' समासः । मुनिवृषा=मुनिश्रेष्ठः । सप्रश्रयम्—प्रश्रयेण=विनयेन, सहितं सप्रश्रयम्, तम्=घटितम्, उदन्तम्=वृत्तान्तमित्यर्थः, उदाहृत्य=कथयित्वा, भृगुसूतेः=भृगुपुत्रस्य भार्गवस्येत्यर्थः ।

सापीति । प्रस्नुतपयोधरा—प्रस्नुतौ=दुग्धभरितौ, क्षरन्तौ, पयोधरौ=स्तनौ यस्याः सा, अङ्कपालीम्=उत्संगम्, स्वस्तिमता=प्रसन्नेन, प्राचेतसाय=वाल्मीकये निभृतम्=निःशब्दम् मनसैवेत्यर्थः ।

स्नान करके लौटी हुई सरस्वती ने जब पुत्र को वहाँ नहीं देखा तो वह हृदय में विलाप करने लगीं । इसी समय प्रसंगवश मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि वहाँ पधारे । उन्होंने बड़ी विनम्रता के साथ सारी घटना को बतलाकर भगवती सरस्वती को भृगु-पुत्र (उशना) का आश्रम दिखला दिया ।

उमड़े हुये दूध से भरपूर स्तनों वाली उस सरस्वती ने भी पुत्र को गोद में लेकर उसका शिर चूमती हुई अत्यन्त प्रसन्न चित से प्रचेता-पुत्र महर्षि वाल्मीकि को मन ही मन छन्दोबद्ध वाणी प्रदान की ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुप्रेषितश्च स तया निषादनिहतसहचरीकं क्रौञ्चयुवानं करुणक्रेङ्कारया गिरा क्रन्दन्तमुदीक्ष्य शोकवान् श्लोकमुज्जगाद ।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

अनुप्रेषितः=विसर्जितः, निषादनिहतसहचरीकम्–निषादेन=व्याधेन निहता =घातिता सहचरी=वधूः यस्य तादृशम्, क्रन्दन्तम्=विलपन्तम्, शोकवान्=शोकसन्तप्तः, उज्जगाद=प्रोच्चचार ।

मा निषादेति । हे निषाद=हे व्याध, त्वम्,शाश्वतीः=चिरकालव्यापिनीः, समाः=संवत्सराणि, चिरकालमित्यभिप्रायः प्रतिष्ठाम्=शान्ति स्थितिं वा, मा अगमः=न लभस्व,यत्=यस्मात् कारणात् त्वं क्रौञ्चमिथुनात्–क्रौञ्ची च क्रौञ्चश्चेति तयोर्मिथुनात् क्रौञ्चयुगलादित्यर्थः,काममोहितम्–कामक्रीडानिरतमित्यर्थः, एकम्=क्रौञ्चमित्यर्थः, अवधीः=हतवान् ।

सरस्वती के द्वारा विदा किये जाने पर उन महर्षि वाल्मीकि ने निषाद के द्वारा सहचरी (मादा) के मार दिये जाने पर अत्यन्त करुणापूर्ण वाणी से क्रन्दन करते हुये तरुण क्रौञ्च पक्षी को देखा । उसे देखकर शोकसन्तप्त मुनि ने यह श्लोक कहा–

अन्वयः–हे निषाद, त्वम्, शाश्वतीः, समाः, प्रतिष्ठाम् मा आगमः, यत्, क्रौञ्चमिथुनात् काममोहितम्, एकम् अवधीः ।

शब्दार्थः–हे निषाद=हे व्याध, त्वम्=तुम, शाश्वतीः=बहुत अधिक, समाः =वर्षों तक, प्रतिष्ठाम्=सुख को, आयु को, मा अगमः=मत प्राप्त करो । यत्=क्योंकि, क्रौञ्चमिथुनात्=क्रौञ्च नामक पक्षी के मिथुन में से, काममोहितम् =कामक्रीड़ा में निरत, एकम्=एकको, अवधीः=मार डाला है ।

अर्थः–हे व्याध तुम बहुत अधिक वर्षों तक सुख (या आयु) को मत प्राप्त करो । क्योंकि (तुमने) क्रौञ्च नामक पक्षी के मिथुन में से कामक्रीडा में निरत एक को मार डाला है ।

विशेष–यहाँ राजशेखर ने कौञ्ची को मारी गई बतलाया है । किन्तु वाल्मीकि रामायण के अनुसार क्रौञ्च मारा गया है । (रामायण १. २. ९.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततो दिव्यदृष्टिर्देवी तस्मा अपि श्लोकाय वरमदात्, यदुतान्यदनधीयानः यः प्रथममेनमध्येष्यते स सारस्वतः कविः संपत्स्यत इति ।

स तु महामुनिः प्रवृत्तवचनो रामायणमितिहासं समदृभत्, द्वैपायनस्तु श्लोकप्रथमाध्यायी तत्प्रभावेन शतसाहस्रीं संहितां भारतम् ।

एकदा तु ब्रह्मर्षिवृन्दारकयोः श्रुतिविवादे दाक्षिण्यवान्देवः स्वयम्भूस्तामिमां निर्णेत्रीमुद्दिदेश । उपश्रुतवृत्तान्तश्च मातरं व्रजन्तीं सोऽनुवव्राज ।

तत इति । पूर्वोक्तश्लोककथनानन्तरमित्यर्थः, दिव्यदृष्टिः-दिव्ये=त्रिकालदर्शिनी दृष्टी=नेत्रे यस्याः सा,अन्यत्=काव्यादिकमित्यर्थः;सारस्वतः=स्वाभाविक इति भावः ।

स त्विति । प्रवृत्तवचनः-प्रवृत्तम्=समुत्पन्नम् वचनम्=श्लोकरचनात्मकं वचनं यस्येत्यर्थः-समदृभत्=व्यरचयदित्यर्थः श्लोकप्रथमाध्यायी-श्लोकं प्रथमम् अधीतेऽसौ इति श्लोकप्रथमाध्यायी ।

---

११) । आनन्दवर्धन ने भी अपने ध्वन्यालोक में राजशेखर से ही मिलता जुलता शब्द-विन्यास करके क्रौञ्ची को ही मारा गया बतलाया है । संभवतः आनन्दवर्धन का ही कथानक राजशेखर की दृष्टि में रहा हो ।

तदनन्तर दिव्यदृष्टि से सम्पन्न देवी सरस्वती ने उस श्लोक को भी वरदान दिया कि 'जो व्यक्ति अन्य कुछ न पढ़ कर भी सबसे प्रथम इस श्लोक को पढ़ेगा वह सारस्वत कवि (अर्थात् सिद्धवाणीवाला कवि) होगा ।'

उन महामुनि वाल्मीकि ने भी कविता-रचना में प्रवृत्त होकर रामायण नामक इतिहास ग्रंथ का निर्माण किया । कृष्णद्वैपायन [महर्षि वेदव्यास] ने भी इस श्लोक को सबसे पहले पढ़कर इसी के प्रभाव से एक लाख श्लोकों वाली महाभारत-संहिता की रचना की ।

एक समय ब्रह्मर्षियों तथा देवताओं के मध्य वेद-विषयक विवाद होने पर चतुर ब्रह्मा ने इस देवी सरस्वती को निर्णायिका बनाने के लिए बुलाया । [अतः सरस्वती ब्रह्मलोक को प्रस्थान करने लगीं] । जब यह वृत्तान्त काव्यपुरुष सारस्वतेय ने सुना तो वह भी जाती हुई माँ के पीछे-पीछे [ब्रह्मलोक के लिए] चल पड़ा । पुत्र सारस्वतेय को अपने पीछे आता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वत्स, परमेष्ठिनाऽननुमतस्य ते न ब्रह्मलोकयात्रा निःश्रेयसायेत्यभिदधाना हठान्न्यवर्तयदेनमात्मना तु प्रववृते ।

ततः स काव्यपुरुषो रुषा निश्चक्राम । प्रियं मित्रमस्य च कुमारः साऽक्रन्दं रुदन्नभ्यधीयत गौर्या तात तूष्णीमास्स्व साऽहमेषा निषेधामीति निगदन्ती समचिन्तयत् । प्रायः प्राणभृतां प्रेमाणमन्तरेण नान्यद् बन्धनमस्ति, तदेतस्य वशीकरणं कामपि स्वियं सृजामीति विचिन्तयन्ती साहित्यविद्याबधूमुदपादयदादिशच्चैनामेष ते रुषा धर्मपतिः पुरः प्रतिष्ठते तदनुवर्त्तस्वैनं निवर्तय च । भवन्तोऽपि हन्त मुनयः काव्यविद्यास्नातकाश्चरितमेतयोः स्तुध्वम्, एतद्धि वः काव्यसर्वस्वं भविष्यतीत्यभिधाय भगवती भवानी जोषमासिष्ट । तेऽपि तथा कर्तुमवतस्थिरे ।

एकदेति । ब्रह्मर्षिवृन्दारकयोः—ब्रह्मर्षिश्च वृन्दारकश्चेति ब्रह्मर्षिवृन्दारकौ तयोः, वृन्दारकाः=देवाः, श्रुतिविवादे=वेदविषयके विवादे; दाक्षिण्यवान्=पटुः । आत्मना तु प्रववृते=स्वयं जगामेत्यर्थः ।

तत इति । रुषा=कोपेन । कुमारः=गौरीपुत्रः कार्तिकेयः तूष्णीम्=मौनम् । प्राणभृताम्=प्राणिनाम्, प्रेमाणम्=स्नेहम्, अन्तरेण=विना । वशीकरणम्=वशीकर्तुम् । हन्तेति प्रसन्नतायामव्ययपदम् । एतत् अनयोश्चरितमित्यर्थः । जोषम्=मौनम् । तेऽपि=ते मुनयोऽपीति,तथा=गौर्याः आदेशानुरूपमित्यर्थः । कर्तुम्=विधातुम् ।

हुआ देखकर सरस्वती ने कहा— 'बेटा, ब्रह्मा की अनुमति बिना प्राप्त किये तुम्हारी ब्रह्मलोक की यात्रा कल्याणकारिणी न होगी ।' ऐसा कहकर जवर्दस्ती पुत्र को वापस कर दिया और स्वयं चली गई ।

माता के इस व्यवहार से रुष्ट होकर वह काव्य-पुरुष (अपने स्थान से) निकल पड़ा । कुमार (कार्तिकेय) इस (सारस्वतेय) का प्रिय मित्र था । (उसे जाते हुए देखकर) वह चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा । इसपर कुमार की माता गौरी ने कहा—'बेटा चुप हो जाओ । मैं अभी (उसे जाने से) रोकती हूँ ।'

ऐसा कहकर पार्वती ने सोचा कि 'प्रायः प्राणियों के लिए प्रेम के अतिरिक्त दूसरा कोई बन्धन नहीं है । अतः (यहाँ से जाने के लिए तत्पर)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथ सर्वे प्रथमं प्राचीं दिशं शिश्रियुर्यत्राङ्गवङ्गसुह्मब्रह्मपुण्ड्राद्या जनपदाः। तत्राऽभियुञ्जाना तमौमेयी यं वेषं यथेष्टमसेविष्ट, स तत्रत्याभिः स्त्रीभिरन्वक्रियत सा प्रवृत्तिरौड्रमागधी। तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

काव्यपुरुषो रुष्टः सन् सर्वत्र बभ्राम। तमनुप्रसादयितुं साहित्यविद्यावधूमुनयश्च तत्र तत्र जग्मुः। एतदेव निर्दिशति—**अथ सर्व इति। प्राचीम्**=पूर्वाम्, **दिशम्**=काष्ठाम् ('दिशस्तु ककुभः काष्ठाः' इत्यमरः)। **तम्** काव्यपुरुषम्, **अभियुञ्जाना**=अभियोक्तुमीहमाना, वशीकर्तुं कामयमानेत्यर्थः, **औमेयी**-उमायाः=गौर्याः अपत्यं स्त्री औमेयी साहित्यविद्यावधूरित्यर्थः, **यं वेषम्** =यन्नेपथ्यम्, **यथेष्टम्**= स्वेच्छया, **असेविष्ट**=स्वीचकारेत्यर्थः। **सा प्रवृत्तिः**=तादृशी अनुकरणप्रवृत्तिः।

काव्य-पुरुष को वश में करने के लिए किसी स्त्री की रचना करूँ।' ऐसा विचार करती हुई गौरी ने साहित्यविद्या-वधू को उत्पन्न कर उसे आदेश दिया कि 'तेरा यह धर्मपति क्रुद्ध होकर आगे जा रहा है। अतः उसके पीछे जाओ और उसे लौटा लाओ।' (उन्होंने फिर मुनियों से कहा)—'हे मुनियो, आप भी काव्य-विद्या के स्नातक हैं। अतः इन दोनों के चरित की स्तुति कीजिये। यही आप लोगों के काव्य का सर्वस्व होगा।' ऐसा कहकर भगवती गौरी चुप हो गईं। वे (मुनि-जन) भी गौरी के आदेशानुसार करने लगे।

विशेषः—**काव्यविद्यास्नातकाः**—जो काव्यविद्या का अध्ययन करके कविता लिखना प्रारम्भ करते हैं, वे काव्यविद्या के स्नातक कहे गये हैं।

इसके अनन्तर वे सब (अर्थात् साहित्यविद्या-वधू और काव्य-विद्या के स्नातक मुनिजन) पूरब दिशा के देशों में गये जहां अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, ब्रह्म तथा पुण्ड्र आदि जनपद थे। वहाँ उस काव्य-पुरुष को अनुरक्त करने के लिए उमा-पुत्री (गौरी की पुत्री) ने अपनी इच्छा के अनुसार जिस-जिस वेष को धारण किया, उस-उस देश की स्त्रियों ने भी वैसा ही वेश धारण किया। (इस अनुकरण-वृत्ति) की मुनियों ने प्रशंसा की है—

विशेषः—इन देशों का तथा आगे वर्णित देशों का विस्तृत परिचय सप्तदश अध्याय के भूगोल-वर्णन के प्रसङ्ग में प्रदर्शित किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहारः,
सीमन्तचुम्बिसिचयः स्फुटबाहुमूलः ।
दूर्वाप्रकाण्डरुचिरास्वगुरूपभोगाद्,
गौडाङ्गनासु चिरमेष चकास्तु वेषः ॥"

मुनिजनस्तुतमाह आर्द्रार्द्रेति । अगुरूपभोगात्—अगुरोः कृष्णलेपस्य उपभोगात्=निवेशात्, लेपनादिनेत्यर्थः, यद्वा अगुरुः=अनुद्दामो यः उपभोगस्तस्मात् हेतोः, दूर्वाप्रकाण्डरुचिरासु=दूर्वाङ्कुरवद्रुचिरासु मनोहरासु तन्वीषु वा, गौडदेशाङ्गना दूर्वा इव श्यामा भवन्तीत्यर्थः । गौडाङ्गनासु=वङ्गप्रदेशललनासु, आर्द्रार्द्रेति—आर्द्रार्द्रम्=अत्यन्तमार्द्रम् चन्दनम्=मलयजरसः येषु तादृशेषु कुचेषु=स्तनेषु अर्पितः=दत्तः सूत्रयुक्तः=सूत्रगुम्फितः हारः=मुक्तामाला यस्मिन् सः, सीमन्तचुम्बिसिचयः- सीमन्तचुम्बि=शिरोऽग्रभागस्पर्शि सिचयम्=वस्त्रं यस्मिन् सः स्फुटबाहुमूलः— स्फुटम्=दृश्यमानम् बाहुमूलम् भुजमूलम् यस्मिन् सः, एषः=अयम्, वेषः=नेपथ्यादिरचना चिरम्=बहुकालम्, चकास्तु=विलसतु ।

अन्वयः—अगुरूपभोगात्, दूर्वाप्रकाण्डरुचिरासु गौडाङ्गनासु, आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहारः, सीमन्तचुम्बिसिचयः, स्फुटबाहुमूलः, एषः, वेषः, चिरम्, चकास्तु ।

शब्दार्थः अगुरूपभोगात्=(शरीर पर) अगुरु का लेप करने के कारण, दूर्वाप्रकाण्डरुचिरासु=दूब के अंकुर के समान कान्तिवाली, गौडाङ्गनासु=गौडदेश (बंगदेश) की ललनाओं के ऊपर, आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहारः=चन्दन के लेप से अत्यन्त गीले स्तनों पर मोती की माला से युक्त, सीमन्तचुम्बिसिचयः=शिर के अग्रभाग तक वस्त्र वाला, स्फुटबाहुमूलः=बाहुमूल (काँख) के स्पष्ट प्रदर्शन से युक्त, एषः=यह, वेषः=वेश, चिरम्=बहुत दिनों तक, चकास्तु=सुशोभित होता रहे ।

अर्थः—(शरीर पर) अगुरु का लेप करने के कारण दूब के अंकुरे के समान कान्तिवाली गौड देश (बंगदेश) की ललनाओं के ऊपर, चन्दन के लेप से अत्यन्त गीले स्तनों पर मोती की माला से युक्त, शिर के अग्रभाग तक वस्त्र वाला, बाहुमूल (काँख) के स्पष्ट प्रदर्शन से युक्त यह वेश बहुत दिनों तक सुशोभित होता रहे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदृच्छयाऽपि यादृङ्नेपथ्यः स सारस्वतेय आसीत् तद्वेषाश्च पुरुषा बभूवुः। साऽपि सैव प्रवृत्तिः। यदपरं नृत्तवाद्यादिकमेषा चक्रे सा भारती वृत्तिः। तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण।

तथाविधाकल्पयापि तया यदवशंवदीकृतः समासवदनुप्रासवद्योगवृत्ति-परम्परागर्भं जगाद सा गौडीया रीतिः। तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण। वृत्तिरीतिस्वरूपं यथावसरं वक्ष्यामः।

पुरुषाणामपि वेषविषय आह— यदृच्छयापीति। स सारस्वतेयः= रूपा गच्छन् स काव्यपुरुषः, यदृच्छया=स्वेच्छया, यादृङ्नेपथ्यः=यथा वेषादिभिरलङ्कृत आसीत्। एषा=साहित्यविद्यावधूः। समानं पूर्वेण अभिष्टुवुरिति सम्बन्धः।

तथाविधेत्यादि। तथाविधाकल्पया=आर्द्रार्द्रचन्दनेत्यादिपूर्वोक्तगौडाङ्गना-वेषयेत्यर्थः,तया=साहित्यविद्यावध्वा, अवशंवदीकृतः= वशंवदो न कृतः। गौडीया रीतिः समासबहुलाऽनुप्रासप्रधानाऽभिधावृत्तिपरा परम्परानुरूपा च भवति।

वृत्तिरीतिस्वरूपञ्च ग्रन्थकृतैवान्येषु प्रकरणेषु निरूपयिष्यते इति तत्रैव व्याख्याऽपि भविष्यतीति।

सारस्वतेय ने भी अपनी इच्छा से जैसा वस्त्र आदि धारण किया था, वैसे वस्त्र आदि का धारण वहाँ के पुरुषों ने भी किया (अर्थात् वहाँ के पुरुषों ने सारस्वतेय के वेश की नकल की)। वह भी वैसी ही प्रवृत्ति हुई (अर्थात् इस प्रवृत्ति का नाम भी वही औड्रमागधी पड़ा)। साहित्यविद्या-वधू ने इस देश में नृत्य-गान आदि का जो प्रदर्शन किया उसी का नाम भारती वृत्ति पड़ा। मुनियों ने उस वृत्ति की भी स्तुति की।

इस प्रकार की वेष-रचना आदि के द्वारा भी वह साहित्यविद्या-वधू उस काव्य-पुरुष को वश में न कर सकी। वहाँ उमा-पुत्री साहित्य-विद्या-वधू ने समासों से भरे हुए, अनुप्रासों से भरपूर, योगवृत्ति (अभिधा) से युक्त तथा परम्परागर्भित वाक्यों का प्रयोग किया था। यह गौडी रीति है। इसकी भी मुनियों ने स्तुति की।

(भारती आदि) वृत्तियों तथा (गौडी आदि) रीतियों के स्वरूप का विवेचन हम यथावसर (अगले प्रकरणों में) करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततश्च स पञ्चालान्प्रत्युच्चचाल यत्र पञ्चालशूरसेनहस्तिनापुरकाश्मीर-वाहीकबाह्लीकबाह्लवेयादयो जनपदाः । तत्राऽभियुञ्जाना तमौमेयीति समानं पूर्वेण । सा पाञ्चालमध्यमा प्रवृत्तिः । तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

ताटङ्कवल्गनतरङ्गितगण्डलेख-
मानाभिलम्बिदरदोलिततारहारम् ।
आश्रोणिगुल्फपरिमण्डलितोत्तरीयं
वेषं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम् ॥

पञ्चालमध्यमां प्रवृत्तिमाह—ताटङ्केति । ताटङ्कानाम्=कर्णभूषणानाम् वल्गनेन=दोलायितेन तरङ्गिता=तरलीकृता गण्डलेखा=कपोलभागो यस्मिन् स तम्, आनाभीत्यादि—आनाभिलम्बी=नाभिपर्यन्तं लम्बायमानो दरम्=स्वल्पं यथा तथा दोलितः=चञ्चलः तारः= शुभ्रो हारो यत्र तम्, आश्रोणीति—आश्रोणिगुल्फम्= आकटिगुल्फम् परिमण्डितम्=परितः सुशोभितम् अन्तरीयम्=अधोवस्त्रं यस्मिन् तम् । महोदयसुन्दरीणाम्=कन्नौजप्रदेशललनानाम् वेषम्=नेपथ्यरचनाम् नमस्यत ।

इसके बाद वह काव्य-पुरुष पाञ्चाल देश की ओर चला, जहाँ कि पाञ्चाल, शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, बाह्लीक तथा बाह्लवेय आदि जनपद हैं । वहाँ भी काव्य-पुरुष का अनुसरण करती हुई औमेयी ने जिन-जिन रूपों को धारण किया, वहाँ की स्त्रियों ने उन-उन रूपों की नकल की । यह प्रवृत्ति पाञ्चालमध्यमा कही जाती है । इस प्रवृत्ति की मुनियों ने प्रशंसा की है ।

अन्वयः—ताटङ्कवल्गनतरङ्गितगण्डलेखम्, आनाभिलम्बिदरदोलिततार-हारम्, आश्रोणिगुल्फपरिमण्डलितान्तरीयम्, महोदयसुन्दरीणाम्, वेषम्, नमस्यत ।

शब्दार्थः—ताटङ्कवल्गनतरङ्गितगण्डलेखम्=कान के आभूषण हिलने से तरङ्गित हो रही है कपोल-लेखा जिसमें ऐसे, आनाभिलम्बिदरदोलिततारहारम्= नाभि पर्यन्त लटक कर किञ्चित् हिलते हुए श्वेत हार वाले, आगुल्फपरि-मण्डलितान्तरीयम्=कमर से घुटने तक मण्डलाकार में लटकते हुए लहँगे से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किञ्चिदार्द्रितमना यन्नेपथ्यः स सारस्वतेय आसीदिति समानं पूर्वेण। साऽपि यदीषन्नृत्तगीतवाद्यविलासादिकं दर्शयांबभूव सात्त्वती वृत्तिः। आबिद्धगतिमत्त्वात्सा चारभटी। तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण। तथाविधाकल्पयापि तया यदीषद्वशंवदीकृत ईषदसमासं ईषदनुप्रासमुपचारगर्भञ्च जगाद सा पाञ्चाली रीतिः तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण।

एतादृशस्य वेषस्य माहात्म्यमाह—किञ्चिदार्द्रितमना इति। किञ्चित्= ईषत् आर्द्रितम्=सरसीकृतं मनो यस्यासौ। पूर्वं सर्वथाऽसम्पृक्तोऽपि काव्यपुरुषः इदानीं स्तोकमनुकूलभावं दधावित्यर्थः। साऽपीति=साहित्यविद्यावधूरित्यर्थः। पाञ्चालीं रीतिमाह–ईषदसमासामिति=किञ्चित्समस्तमिति यावत्। यत्रतत्रानुप्रासयुक्तं वचो यत्र सा पाञ्चाली नाम रीतिरिति। ताम् = पाञ्चालीं रीतिमित्यर्थः।

युक्त, महोदयसुन्दरीणाम्=कन्नौज की सुन्दरियों के, वेषम्=वेश को, नमस्यत= नमस्कार करो।

अर्थ—कान के आभूषण के हिलने से तरङ्गित हो रही है कपोल-लेखा जिसमें ऐसे, नाभिपर्यन्त लटक कर किञ्चित हिलते हुए श्वेत हार वाले, कमर से घुटने तक मण्डलाकार में लटकते हुए लहँगे से युक्त, कन्नौज की सुन्दरियों के वेश को नमस्कार करो।

कुछ अनुरक्त मन वाले सारस्वतेय ने जिस वेष को धारण किया, वहाँ के पुरुषों ने भी वैसा ही वेष स्वीकार किया। मुनियों ने उसकी प्रशंसा की। इस प्रवृत्ति का नाम भी पाञ्चालमध्यमा पड़ा। (वहाँ सारस्वतेय को रिझाने के लिए) उस औमेयी ने भी जो कुछ नृत्त-गीत आदि का प्रदर्शन किया उसका नाम सात्वती वृत्ति पड़ा। (नृत्त-वाद्य आदि रूप) सात्वती वृत्ति में कुटिल गति का संयोग होने पर इसे आरभटी वृत्ति कहते हैं। मुनियों ने इसकी भी प्रशंसा की। इस प्रकार का व्यवहार करने वाली उस साहित्यवधू द्वारा कुछ वश में किए हुए काव्य-पुरुष ने जो छोटे-छोटे समास वाले तथा अल्प अनुप्रास युक्त एवं लाक्षणिक (लक्षणावृत्तियुक्त) वाक्यों का प्रयोग किया उसका नाम पाञ्चाली रीति है। इस रीति की भी मुनियों ने प्रशंसा की है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततः सोऽवन्तीन्प्रत्युच्चचाल यत्रावन्तीवैदिशसुराष्ट्रमालवार्बुदभृगुकच्छादयो जनपदाः । तत्राऽभियुञ्जाना तमौमेयीति समानं पूर्वेण । सा प्रवृत्तिरावन्ती । पाञ्चालमध्यमादाक्षिणात्ययोरन्तरचारिणी हि सा । अत एव सात्वतीकैशिक्यौ तत्र वृत्ती । तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

पाञ्चालनेपथ्यविधिर्नराणां स्त्रीणां पुनर्नन्दतु दाक्षिणात्यः ।
यज्जल्पितं यच्चरितादिकं तदन्योन्यसंभिन्नमवन्तिदेशे ॥

पाञ्चाली रीतिमुक्त्वा तस्याग्रे गमनं वर्णयन्नाह—ततः सोऽवन्तीनिति सः=काव्यपुरुषः, अवन्तीन् अवन्तीन् नाम देशान्, यत्र=यस्मिन्नवन्तिदेशे इत्यर्थः । यत्रोक्ता जनपदा सन्ति सोऽवन्तिदेशः । सा=आवन्तीत्यर्थः । ताम्=आवन्तीमित्यर्थः ।

मुनीनामभिष्टुतमाह—पाञ्चालेति । नराणाम्=पुरुषाणाम्, पाञ्चालनेपथ्यविधिः— पाञ्चालः=पाञ्चालदेशभवो नेपथ्यविधिः=वेशरचनाप्रकारः, पुनः=तथा, स्त्रीणाम्=वनितानाम्, दाक्षिणात्यः=दक्षिणदिग्भवः,नेपथ्यविधिरिति शेषः,

---

विशेषः—आविद्धगतिमत्वात्—नृत्य-गीत आदि में कुटिल गति का होना आरभटी वृत्ति है । गीत में तोड़-मरोड़ तथा लहर देना आदि कुटिलता है । नृत्य या नृत्त में अधिक कूदना तथा चक्कर काटना आदि कुटिलता है ।

इसके बाद वह काव्य-पुरुष अवन्ति—देश की ओर गया, जहाँ कि अवन्ति, वैदिश, सुराष्ट्र, मालव, अर्बुद तथा भृगुकच्छ (भड़ौंच) आदि जनपद हैं । काव्य-पुरुष का अनुसरण करती हुई औमेयी ने वहाँ जिस वेष को धारण किया वहाँ की स्त्रियों ने भी उसका अनुकरण किया । उसको आवन्ती प्रवृत्ति कहते हैं । यह प्रवृत्ति पाञ्चालमध्यमा तथा दाक्षिणात्या के बीच की है । अतः सात्वती और कैशिकी वृत्तियाँ वहाँ पाई जाती हैं। मुनियों ने उसकी भी प्रशंसा की है—

अन्वयः—नराणाम् पाञ्चालनेपथ्यविधिः, पुनः, स्त्रीणाम्, दाक्षिणात्यः (नेपथ्यविधिः), नन्दतु, (तत्तद्देशे), यत्, जल्पितम्, यत्, चरितादिकम्, तत्, अवन्तिदेशे, अन्योन्यसंभिन्नम्, (अस्ति) ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततश्च स दक्षिणां दिशमाससाद यत्र मलयमेकलकुन्तलकेरलकालञ्जरमहाराष्ट्रवङ्गकलिङ्गादयो जनपदाः तत्राऽभियुञ्जाना तमौमेयीति समानं पूर्वेण। सा दाक्षिणात्या प्रवृत्तिः। तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

नन्दतु=प्रीतिप्रदो भवतु। पाञ्चालदेशे पुरुषाणां तथा दक्षिणदेशे स्त्रीणां वेषविन्यासादिकाः क्रियाश्चित्तमाकर्षयन्तीति भावः। तत्तद्देशे **यत् जल्पितम्**=भाषणम् **यत् चरितादिकम्**=व्यवहारादिकं वर्तते, **तत्**=तत्सर्वमिति भावः, **अवन्तिदेशे**=अवन्तिभूमौ, **अन्योन्यसंभिन्नम्**=परस्परं मिलितम् अस्तीति शेषः। अतस्तदुत्कृष्टता विवाद-विरहिता।

ततश्चेति। सः=काव्यपुरुषः, **यत्र**= यस्यां दिशि, **अभियुञ्जाना**=काव्यपुरुषस्यानुसरणपरा, **तम्**=काव्यपुरुषमित्यर्थः।

शब्दार्थः—नराणाम्=पुरुषों की, पाञ्चालनेपथ्यविधिः=पाञ्चाल देश की वेशभूषा, पुनः=तथा, स्त्रीणाम्=स्त्रियों की, दाक्षिणात्यः=दक्षिण देश की, (नेपथ्यविधिः=वेश-भूषा), नन्दतु=अधिक आकर्षक होती है, (तत्तद्देशे=उन-उन देशों में) यत्=जो, जल्पितम्=भाषण, यत्=जो, चरितादिकम्=व्यवहार आदि है) तत्=वह, अवन्तिदेशे=अवन्ति देश में, अन्योन्यसम्भिन्नम्=परस्पर मिश्रित, (अस्ति=है) ॥

अर्थः—पुरुषों की पाञ्चाल देश की वेश-भूषा तथा स्त्रियों की दक्षिण देश की (वेश-भूषा) अधिक आकर्षक होती है। (उन-उन देशों में अर्थात् पाञ्चाल तथा दाक्षिणात्य देशों में) जो भाषण तथा व्यवहार आदि है वह अवन्ति देश में परस्पर मिश्रित (अर्थात् मिला हुआ) है।

इसके अनन्तर वह काव्य-पुरुष दक्षिण दिशा में गया जहाँ मलय, मेकल, कुन्तल, केरल; पाल, मञ्जर, महाराष्ट्र, वङ्ग तथा कलिङ्ग आदि जनपद हैं। वहाँ काव्य-पुरुष का अनुगमन करती हुई औमेयी के वेष का वहाँ की स्त्रियों ने अनुसरण किया। यह दाक्षिणात्या प्रवृत्ति है। इसकी मुनियों ने प्रशंसा की है।

विशेषः—पहले पूरब दिशा में वङ्ग की चर्चा करके अब दक्षिण में भी उसका उल्लेख करना असङ्गत प्रतीत होता है। अतः दक्षिण दिशा के प्रसंग में उल्लिखित वंग का अर्थ है—वंग देश की दक्षिणी सीमा जो सुदूर दक्षिण तक फैली हुई थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आमूलतो वलितकुन्तलचारुचूड-
श्चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः ।
कक्षानिवेशनिविडीकृतनीविरेष
वेषश्चिरं जयति केरलकामिनीनाम् ॥
तामनुरक्तमनाः स यन्नेपथ्यः सारस्वतेय आसीदिति समानं पूर्वेण ।

मुनीनां प्रशंसामाह—आमूलत इति । आमूलतः=मूलादेव, वलितकुन्तलचारुचूडः—वलिताः=कुटिलाः कुन्तलाः=केशाः ('चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः) तैश्चारुः=मनोहारिणी चूडा=धम्मिल्लो यस्मिन्नसौ, चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः—चूर्णालकानाम् = कुञ्चितकेशानाम् प्रचयः=समूहस्तेन लाञ्छितः=सुशोभितो भालभागः=ललाटप्रदेशो यस्मिन् वेषेऽसौ, कक्षानिवेशनिविडीकृतनीविः—कक्षा=कटिवस्त्रम् तस्याः निवेशेन=बन्धनेन निविडीकृता=घनीकृता नीविः=जघनवस्त्रग्रन्थिर्यस्मिन्नसौ, एषः, केरलकामिनीनाम्=केरलसुन्दरीणाम् वेषः=नेपथ्यरचना, चिरम्=चिरकालम्, अत्यन्तमिति भावः, जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्तते ।

अन्वयः—आमूलतः, वलितकुन्तलचारुचूर्णः, चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः, कक्षानिवेशनिविडीकृतनीविः, एषः, केरलकामिनीनाम्, वेषः, चिरम्, जयति ॥

शब्दार्थः—आमूलतः=मूल भाग से ही, वलितकुन्तलचारुचूडः=लहरदार केशों से सुन्दर जूड़ा वाला, चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः=घुंघराले बाल गुच्छों से सुशोभित भाल-भाग से अलंकृत,कक्षानिवेशनिविडीकृतनीविः=कटिवस्त्र के बाँधने से कसी हुई नीवि (धोती की गांठ) वाला, एषः=यह, केरलकामिनीनाम्=केरल देश की सुन्दरियों का, वेषः=वेष, चिरम्=अत्यन्त, जयति=उत्कृष्ट है ।

अर्थः—मूल भाग से ही लहरदार केशों से सुन्दर जूड़ा वाला, घुंघराले वालगुच्छों से सुशोभित भाल-भाग से अलंकृत, कटिवस्त्र के बाँधने से कसी हुई नीवि (धोती की गांठ) वाला यह केरल देश की सुन्दरियों का वेष अत्यन्त उत्कृष्ट है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सापि यद्विचित्रनृत्तगीतवाद्यविलासादिकमविर्भावयामास सा कैशिकीवृत्तिस्तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण। यदत्यर्थं च स तया वशंवदीकृतः स्थानानुप्रासवदसमासं योगवृत्तिगर्भं च जगाद सा वैदर्भी रीतिः। तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण। तत्र वेषविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः, विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः, वचनविन्यासक्रमो रीतिः।

तामनुरक्तमना इति। ताम्= साहित्यविद्यावधूमित्यर्थः, अनुरक्तमनाः= आसक्तचेताः, सः=काव्यपुरुष इत्यर्थः, यन्नेपथ्यः=यथा वस्त्रादिसम्पन्नः सारस्वतेय आसीत् तस्यानुकरणं तत्रत्याः पुरुषा अकुर्वन्निति वाक्यशेषः, सापि=साहित्यविद्यावधूरपि। वशंवदीकृतः=अनुरक्तीकृतः, स्थानानुप्रासवत् योग्यस्थानकृतानुप्रासम्, असमासम्=क्वचिदल्पसमासयुक्तमित्यर्थः, योगप्रवृत्तिगर्भम्—योगप्रवृत्तिः= अभिधावृत्तिस्तद्गर्भम् अभिधामूलो ध्वनिस्तु भवत्येव॥

उस काव्य-पुरुष ने वहाँ साहित्यविद्या-वधू पर अनुरक्त हो जैसा वेष धारण किया था, उस वेष का वहां के पुरुषों ने भी अनुसरण किया। औमेयी (उमा-पुत्री) ने भी (उस देश में) जिस विचित्र नृत्य, गीत, वाद्य तथा हाव-भाव आदि क्रियाएँ की उसे कैशिकी वृत्ति कहते हैं। मुनियों ने उसकी भी प्रशंसा की है। साहित्यविद्या-वधू के द्वारा अत्यन्त वश में कर लिए गये काव्य-पुरुष ने यथास्थान अनुप्रासयुक्त, समास-विहीन तथा व्यंजक वाक्यों का जो प्रयोग किया उसी को वैदर्भी रीति कहते हैं। मुनियों ने उस रीति की प्रशंसा की है। इनमें वेष-विन्यास की परिपाटी का नाम है—प्रवृत्ति, नाच-गाना आदि विलास-विन्यास की सरणि का नाम वृत्ति तथा वचन-विन्यास की चातुरी का नाम रीति है।

विशेषः—भारत के पूर्वी भाग में औड्रमागधी प्रवृत्ति भारती वृत्ति तथा गौडीया रीति का प्रचलन था।

भारत के उत्तरी भाग में पाञ्चालमध्यमा प्रवृत्ति सात्वती और आरभटी वृत्ति तथा पाञ्चाली रीति प्रचलित थी।

अवन्ति देश अर्थात् भारत के मध्य भाग में आवन्ति प्रवृत्ति सात्वती और कैशिकी वृत्ति का व्यवहार था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"चतुष्टयी गतिर्वृत्तीनां प्रवृत्तीनां च देशानां पुनरानन्त्यं तत्कथमिव कात्स्न्र्येन परिग्रहः" इत्याचार्याः । अनन्तानपि हि देशांश्चतुर्धैवाकल्प्य कल्पयति "चक्रवर्तिक्षेत्रं सामान्येन, तदवान्तरविशेषाः पुनरनन्ता एव" इति यायावरीयः ।

दक्षिणात्समुद्रादुदीचीं दिशं प्रति योजनसहस्रं चक्रवर्तिक्षेत्रं, तत्रैष नेपथ्यविधिः । ततः परं दिव्याद्या अपि यं देशमधिवसेयुस्तद्देश्यं वेषमाश्रन्तो निबन्धनीयाः । स्वभूमौ तु कामचारः । द्वीपान्तरभवानां तदनुसारेण वृत्तिप्रवृत्ती ।

चतुष्टयीति । चतुष्टयी गतिः=चत्वारो भेदाः, कात्स्न्र्येन=सामग्र्येण । सामान्येन=साधारणरूपेण सर्वदेशसमूहात्मकमिदं चक्रवर्तिक्षेत्रमस्ति । अवान्तरविशेषैः=विभिन्नाभिविशेषताभिरित्यर्थः ॥

चक्रवर्तिक्षेत्रं कथयति–दक्षिणादिति । उदीचीं दिशम्=उत्तरां काष्ठाम्, नेपथ्यविधिः=वेषविन्यासप्रकारः । निबन्धनीयाः=वर्णनीयाः । कामचारः=इच्छानुरूपं वर्णनं कर्तव्यम् । तदनुसारेण=तत्तद्द्वीपप्रथानुरूपमित्यर्थः ।

भारत के दक्षिण भाग में दाक्षिणात्या प्रवृत्ति, कैशिकी वृत्ति और वैदर्भी रीति व्यवहृत थी ।

यहाँ आचार्यों की शङ्का है कि (आपके मत के अनुसार) वृत्तियाँ तथा रीतियाँ चार ही हैं । किन्तु देश तो अनन्त हैं । ऐसी अवस्था में उन चार वृत्तियों तथा रीतियों में सभी देशों का अन्तर्भाव कैसे हो सकेगा ? इस पर यायावरकुलोत्पन्न राजशेखर का उत्तर है कि—अनन्त देशों को भी कवि लोग चार भागों में बाँट कर अपना कार्य-निर्वाह करते हैं । (उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि) यह सम्पूर्ण देश चक्रवर्ति-क्षेत्र है, किन्तु इसके अन्दर भीतरी विशेषताओं के कारण बहुत से अवान्तर देश हैं ।

अब चक्रवर्ति-क्षेत्र का वैशिष्ट्य बतलाते हुए कह रहे हैं—

दक्षिण समुद्र से आरम्भ कर उत्तर दिशा पर्यन्त एक हजार योजन (चार हजार कोश) तक चक्रवर्ति-क्षेत्र है । वहाँ पर वेष धारण का यही तरीका है । इसके आगे यदि दिव्य आदि जिन देशों में बसे (अथवा वहां का वर्णन करे)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सापि यद्विचित्रनृत्तगीतवाद्यविलासादिकमाविर्भावयामास सा कैशिकीवृत्तिस्तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण। यदत्यर्थं च स तया वशंवदीकृतः स्थानानुप्रासवदसमासं योगवृत्तिगर्भं च जगाद सा वैदर्भी रीतिः। तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण। तत्र वेषविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः, विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः, वचनविन्यासक्रमो रीतिः।

तामनुरक्तमना इति। ताम्= साहित्यविद्यावधूमित्यर्थः, अनुरक्तमनाः= आसक्तचेताः, सः=काव्यपुरुष इत्यर्थः, यन्नेपथ्यः=यथा वस्त्रादिसम्पन्नः सारस्वतेय आसीत् तस्यानुकरणं तत्रत्याः पुरुषा अकुर्वन्निति वाक्यशेषः, सापि=साहित्यविद्यावधूरपि। वशंवदीकृतः=अनुरक्तीकृतः, स्थानानुप्रासवत् योग्यस्थानकृतानुप्रासम्, असमासम्=क्वचिदल्पसमासयुक्तमित्यर्थः, योगप्रवृत्तिगर्भम्–योगप्रवृत्तिः= अभिधावृत्तिस्तद्गर्भम् अभिधामूलो ध्वनिस्तु भवत्येव॥

उस काव्य-पुरुष ने वहाँ साहित्यविद्या-वधू पर अनुरक्त हो जैसा वेष धारण किया था, उस वेष का वहां के पुरुषों ने भी अनुसरण किया। औमेयी (उमा-पुत्री) ने भी (उस देश में) जिस विचित्र नृत्य, गीत, वाद्य तथा हाव-भाव आदि क्रियाएँ की उसे कैशिकी वृत्ति कहते हैं। मुनियों ने उसकी भी प्रशंसा की है। साहित्यविद्या-वधू के द्वारा अत्यन्त वश में कर लिए गये काव्य-पुरुष ने यथास्थान अनुप्रासयुक्त, समास-विहीन तथा व्यंजक वाक्यों का जो प्रयोग किया उसी को वैदर्भी रीति कहते हैं। मुनियों ने उस रीति की प्रशंसा की है। इनमें वेष-विन्यास की परिपाटी का नाम है—प्रवृत्ति, नाच-गाना आदि विलास-विन्यास की सरणि का नाम वृत्ति तथा वचन-विन्यास की चातुरी का नाम रीति है।

विशेषः—भारत के पूर्वी भाग में औड्रमागधी प्रवृत्ति भारती वृत्ति तथा गौडीया रीति का प्रचलन था।

भारत के उत्तरी भाग में पाञ्चालमध्यमा प्रवृत्ति सात्त्वती और आरभटी वृत्ति तथा पाञ्चाली रीति प्रचलित थी।

अवन्ति देश अर्थात् भारत के मध्य भाग में आवन्ति प्रवृत्ति सात्त्वती और कैशिकी वृत्ति का व्यवहार था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"चतुष्टयी गतिर्वृत्तीनां प्रवृत्तीनां च देशानां पुनरानन्त्यं तत्कथमिव कात्स्न्र्येन परिग्रहः" इत्याचार्याः । अनन्तानपि हि देशांश्चतुर्धैवाकल्प्य कल्पयति "चक्रवर्तिक्षेत्रं सामान्येन, तदवान्तरविशेषाः पुनरनन्ता एव" इति यायावरीयः ।

दक्षिणात्समुद्रादुदीचीं दिशं प्रति योजनसहस्रं चक्रवर्तिक्षेत्रं, तत्रैष नेपथ्यविधिः । ततः परं दिव्याद्या अपि यं देशमधिवसेयुस्तद्देश्यं वेषमाश्रन्तो निबन्धनीयाः । स्वभूमौ तु कामचारः । द्वीपान्तरभवानां तदनुसारेण वृत्तिप्रवृत्ती ।

चतुष्टयीति । चतुष्टयी गतिः=चत्वारो भेदाः, कात्स्न्र्येन=सामग्र्येण । सामान्येन=साधारणरूपेण सर्वदेशसमूहात्मकमिदं चक्रवर्तिक्षेत्रमस्ति । अवान्तरविशेषैः=विभिन्नाभिविशेषताभिरित्यर्थः ॥

चक्रवर्तिक्षेत्रं कययति—दक्षिणादिति । उदीचीं दिशम्=उत्तरां काष्ठाम्, नेपथ्यविधिः=वेषविन्यासप्रकारः । निबन्धनीयाः=वर्णनीयाः । कामचारः=इच्छानुरूपं वर्णनं कर्तव्यम् । तदनुसारेण=तत्तद्द्वीपप्रथानुरूपमित्यर्थः ।

भारत के दक्षिण भाग में दाक्षिणात्या प्रवृत्ति, कैशिकी वृत्ति और वैदर्भी रीति व्यवहृत थी ।

यहाँ आचार्यों की शङ्का है कि (आपके मत के अनुसार) वृत्तियाँ तथा रीतियाँ चार ही हैं । किन्तु देश तो अनन्त हैं । ऐसी अवस्था में उन चार वृत्तियों तथा रीतियों में सभी देशों का अन्तर्भाव कैसे हो सकेगा ? इस पर यायावरकुलोत्पन्न राजशेखर का उत्तर है कि—अनन्त देशों को भी कवि लोग चार भागों में बाँट कर अपना कार्य-निर्वाह करते हैं । (उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि) यह सम्पूर्ण देश चक्रवर्ति-क्षेत्र है, किन्तु इसके अन्दर भीतरी विशेषताओं के कारण बहुत से अवान्तर देश हैं ।

अब चक्रवर्ति-क्षेत्र का वैशिष्ट्य बतलाते हुए कह रहे हैं—

दक्षिण समुद्र से आरम्भ कर उत्तर दिशा पर्यन्त एक हजार योजन (चार हजार कोश) तक चक्रवर्ति-क्षेत्र है । वहाँ पर वेष धारण का यही तरीका है । इसके आगे यदि दिव्य आदि जिन देशों में बसे (अथवा वहां का वर्णन करे)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतयस्तु तिस्रस्तास्तु पुरस्तात् ।

तत्रास्ति मनोजन्मनो देवस्य क्रीडावासो विदर्भेषु वत्सगुल्मं नाम नगरम् । तत्र सारस्वतेयस्तामौमेयीं गन्धर्वत्परिणिनाय । ततस्तद्वधूवरं विनिवृत्त्य तेषु प्रदेशेषु विहरमाणं तुषारगिरिमेवाजगाम, यत्र गौरी सरस्वती च मिथः सम्बधिन्यौ तस्थतुः । तौ च कृतवन्दनौ दम्पती दत्त्वाशिषं प्रभावमयेन कविमानसनिवासिनौ चक्रतुः ।

तयोश्च कविलोकस्वर्गसर्गं तमकल्पतां, यत्र काव्यमयेन शरीरेण मर्त्यमधिवसन्तो दिव्येन देहेन कवय आकल्पं मोदन्ते ।

तत्रास्तीति । मनोजन्मनः=कामदेवस्य । गन्धर्वत्परिणिनाय=गान्धर्वविधिना विवाहं चकारेत्यर्थः । विनिवृत्य=परावृत्य । तुषारगिरिम्=हिमालयपर्वतम् । सम्बन्धिन्यौ=सखीभावमापन्ने भूत्वा । प्रभावमयेन=काल्पनिकेन, वपुषा=शरीरेण ॥

तयोश्चेति । यत्र=स्वर्ग इत्यर्थः, मर्त्यम्=मर्त्यलोकम्, अधिवसन्तः=निवसन्तः, आकल्पम्=प्रलयपर्यन्तम् ॥

तो उन देशों के वेष आदि का वर्णन करना चाहिये । अपने देश का यथेच्छ वर्णन करे । दूसरे द्वीपों के वर्णन के अवसर पर उनके अनुसार वहाँ की वृत्ति तथा प्रवृत्ति का वर्णन करना चाहिए ।

रीतियां तीन हैं इनका वर्णन आगे किया जायेगा ।

विदर्भ देश में कामदेव की क्रीड़ाभूमि वत्सगुल्म नामक नगर है । उस नगर में काव्य-पुरुष ने उमा पुत्री उस साहित्यविद्या-वधू के साथ गान्धर्व विधि से विवाह किया । इसके बाद वे वर-वधू होकर (अर्थात् पति-पत्नी होकर) उन-उन प्रदेशों में विहार करते हुए हिमालय पर्वत पर ही आ गये जहाँ कि गौरी और सरस्वती परस्पर सखी भाव के साथ रहती थीं । उन पति-पत्नी ने उन दोनों को प्रणाम किया । उन लोगों ने भी आशीष देते हुए प्रभावमय शरीर से उन्हें कवि-मानस का निवासी बना दिया ।

इस प्रकार उन दोनों के लिए कवि-लोकरूपी नवीन स्वर्ग की सृष्टि की गई । जिस स्वर्ग लोक में, मर्त्य-लोक में काव्यमय शरीर से निवास करने वाले कवि जन, दिव्य शरीर से प्रलय-पर्यन्त निवास करते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्येष काव्यपुरुषः पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
एवं विभज्य जानानः प्रेत्य चेह च नन्दति ।।

।। इति राजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे
तृतीयोऽध्यायः काव्यपुरुषोत्पत्तिः ।।

अध्यायमुपसंहरति—इत्येष इति । इति=इत्थम् पुरा=पूर्वम्, स्वयम्भुवा=ब्रह्मणा एषः=अयम् काव्यपुरुषः=सारस्वतेय इत्यर्थः, सृष्टः=रचितः । एवम्=इत्थम्, विभज्य=उत्पत्तिविकासादिकं विविच्येत्यर्थः, जानानः=जानन्, पुरुषः=जनः, प्रेत्य=परलोके, च=तथा इह=अत्र लोके च, नन्दति=मोदते ।।

।। इति शाण्डिल्यगोत्रोद्भवेन रमाशङ्करत्रिपाठिना विरचितायां
काव्यमीमांसाकौमुद्यां तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ।।

इस प्रकार यह काव्य-पुरुष प्राचीन काल में ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न किया गया था । जो व्यक्ति इस कथा को विवेकपूर्वक चाहता है (अर्थात् जो इस कथा की उत्पत्ति एवं विकास को जानता है), वह इस लोक ओर परलोक—दोनों लोकों में आनन्द प्राप्त करता है ।

।। इस प्रकार राजशेखर के द्वारा विरचित काव्यमीमांसा
के कविरहस्यरूप प्रथम अधिकरण का तृतीय
अध्याय समाप्त हुआ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थोऽध्यायः

पदवाक्यविवेकः

द्विविधं शिष्यमाचक्षते यदुत बुद्धिमानाहार्यबुद्धिश्च । यस्य निसर्गतः शास्त्रमनुधावति बुद्धिः स बुद्धिमान् । यस्य च शास्त्राभ्यासः संस्कुरुते बुद्धिमसावाहार्यबुद्धिः ।

त्रिधा च सा, स्मृतिर्मतिः प्रज्ञेति । अतिक्रान्तस्यार्थस्य स्मर्त्री स्मृतिः ।

अथ शिष्यभेदं प्रदर्शयन्नाह—द्विविधमिति । बुद्धिमान्—बुद्धिरस्त्यस्येति बुद्धिमान्=बुद्धिसम्पन्नः, आहार्यबुद्धिः—आहार्या=शास्त्राभ्यासैरधिगता वृद्धिमापन्ना वेति बुद्धिर्यस्यासौ तादृशः । निसर्गतः=स्वभावतः प्रकृत्यैवेति यावत्, शास्त्रमनुधावति=शास्त्रतत्त्वमवगाहते । शास्त्राभ्यासः=शास्त्रानुशीलनम्, संस्कुरुते=परिष्कुरुते, असौ=शिष्य इत्यर्थः, आहार्यबुद्धिर्निगद्यते ।

बुद्धिं विभजते—त्रिधा च सेति । सा=बुद्धिः, अतिक्रान्तस्य=व्यतीतस्य, अर्थस्य=विषयस्य, स्मर्त्री=स्मरणकर्त्री, वर्तमानस्य=तत्कालमनुभूयमानस्यार्थस्य,

---

शिष्य और प्रतिभा

पिछले अध्याय में कल्पित कथा के द्वारा काव्य की उत्पत्ति तथा स्वरूप आदि का वर्णन किया गया है। अब इस अध्याय में काव्य-विद्या के अधिकारी तथा काव्यसृष्टि में समर्थ प्रतिभा का विवेचन किया जायगा—

शिष्य दो प्रकार के होते हैं–(१) बुद्धिमान् और (२) आहार्य-बुद्धि। जिसकी बुद्धि स्वभावतः शास्त्र का अनुगमन करती है (अर्थात् झटिति शास्त्र के रहस्य को पकड़ लेती है) वह बुद्धिमान् है। जिसकी बुद्धि को शास्त्रों का अभ्यास संस्कृत एवं परिष्कृत करता है (अर्थात् तत्त्व समझने के योग्य बनाता है) वह आहार्य-बुद्धि है।

वह (अर्थात् बुद्धि) तीन प्रकार की होती है–(१) स्मृति, (२) मति और (३) प्रज्ञा। पीछे बीती हुई अनुभूत बातों का स्मरण कराने वाली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मार्गकविः—

मूलं बालकवीरुधां सुरभयो जातीतरूणां त्वचः,
सारश्चन्दनशाखिनां किसलयान्यार्द्रण्यशोकस्य च ।
शैरीषी कुसुमोद्गतिः परिणमन्मोचं च सोऽयं गुणो,
ग्रीष्मेणोष्महरः पुरा किल ददे दग्धाय पञ्चेषवे ।।

अत्र मार्गकविकाव्यमुदाहरति—मूलमिति । बालकवीरुधाम्—बालिकाश्च=स्वल्पकालाश्च ता वीरुधश्च कोमललताश्च तासां कोमललतानामित्यर्थः. मूलम्=कन्दम् जातीतरूणाम्=चम्पकवृक्षाणाम्, सुरभयः=सुगन्धयुक्ताः. त्वचः=वल्कलम् चन्दनशाखिनाम्=चन्दनवृक्षाणाम्, सारः=प्रधानोंऽशः च=तथा अशोकस्य=बकुलस्य आर्द्राणि=क्लिन्नानि किसलयानि=पल्लवानि शैरीषी=शिरीषसम्बधिनी कुसुमोद्गतिः—कुसुमानाम् = पुष्पाणाम् उद्गतिः = उत्पत्तिः परिणमत्=

स्तनों पर, हारमूर्त्या=हार के रूप में, परिणमन्ति=परिवर्तित हो जाते हैं ।

हे पतली कमरवाली सुन्दरी, इस ताम्रपर्णी (नामक नदी) को देखो सागर में जिस (ताम्रपर्णी) के सीपियों के खुले हुये सम्पुटों से निकाले गये जल सुन्दरियों के विशाल स्तनों पर हार के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं ।

मार्ग (रीति)—कवि का उदाहरण—

अन्वयः—बालकवीरुधाम्, मूलम्; जातीतरूणाम्, सुरभयः, त्वचः, चन्दनशाखिनाम्, सारः; च; अशोकस्य, आर्द्राणि, किसलयानि; शैरीषी, कुसुमोद्गतिः; परिणमत्, मोचम्; सः, अयम्, गणः, ऊष्मसरः, (वर्तते, अतः); पुरा दग्धाय, पञ्चेषवे, ग्रीष्मेण, ददे ।

शब्दार्थः—बालकवीरुधाम्=कोमलताओं की, मूलम्=जड़; जातीतरूणाम्=मालती वृक्षों की, सुरभयः=सुगन्धित, त्वचः=छालें; चन्दनशाखिनाम्=चन्दन वृक्षों का, सारः=सार, च=और, अशोकस्य=अशोक के, किसलयानि=नवीन-नवीन पल्लव, शैरीषी=शिरीष की, पुष्पोद्गतिः=पुष्पोत्पत्ति, परिणमत्=पकता हुआ, मोचम्=केला, सः=पूर्वोक्त, अयम्=यह, गणः=समूह, ऊष्महरः=गर्मी का हरण करने वाला, वर्तते=है, अतः=इसलिए, पुरा=पहले, दग्धाय=(शंकर की नेत्राग्नि से) भस्म हुये, पञ्चेषवे=कामदेव के लिए, ग्रीष्मेण=ग्रीष्म के द्वारा, ददे=प्रदान किया गया ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्रार्थकविः—

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ,
ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।

पाकोन्मुखम् मोचम्=कदली सः=पूर्वोक्तः गणः मूलादीनां समूहः ऊष्महरः= सन्तापापहारको वर्तते । अतः पुरा=पूर्वं शङ्करनेत्राग्निनेत्यर्थः दग्धाय = भस्मीभूताय पञ्चेषवे=कामाय ग्रीष्मेण ददे प्रदत्तः । ऊष्महरा एते पदार्था ग्रीष्म एव भवन्तीति भावः ।

कृष्णस्य ब्रह्मरूपत्वं प्रतिपादयन्नाह वेणीसंहारकविः—आत्मारामा इति । आत्मारामाः—आत्मनि आ=समन्तात् रमन्ते=विचरन्तीति आत्मारामाः= आत्मनि विहरणशीलाः, वा आ सम्यक् रमन्ते अस्मिन्निति आरामः=रमणस्थलम् आत्मा आरामः येषान्ते तथोक्ताः, निर्विकल्पे=ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय-भेद-शून्ये, परि-निष्ठिते इत्यर्थः, समाधौ=नियमविशेषे, विहितरतयः—विहिता=प्रेरिता रतिः=

कोमल लताओं की जड, मालती वृक्षों की सुगन्धित जड़ें, चन्दन-वृक्षों का सार और अशोक के नवीन-नवीन पल्लव, शिरोष की पुष्पोत्पत्ति, पकता हुआ केला, पूर्वोक्त (वस्तुओं का) यह समूह गर्मी का हरण करने वाला है । इस-लिए पहले (शंकर की नेत्राग्नि से) भस्म हुये कामदेव के लिए ग्रीष्म के द्वारा प्रदान किया गया (अर्थात् ग्रीष्म ने इन सारी वस्तुओं को उपचार के निमित्त दग्ध काम को प्रदान किया) ।

विशेषः—यहाँ कवि ने जड़ से लेकर फल तक का वर्णन बड़े ही आकर्षक ढंग से वैदर्भी रीति का आश्रय लेकर किया है । अतः यह रीतिकवि के काव्य का उदाहरण है ।

शास्त्रार्थकवि का उदाहरण—

अन्वयः—आत्मारामाः, निर्विकल्पे, समाधौ, विहितरतयः, ज्ञानोद्रेकात्; विघटिततमोग्रन्थयः, सत्त्वनिष्ठाः, तमसाम्, वा, ज्योतिषाम्, परस्तात्, यम्, कमपि, वीक्षन्ते, तम्, अमुम्, पुराणम्, देवम्, मोहान्धः, अयम्, कथम्, वेत्तु ।

शब्दार्थः—आत्मारामाः=आत्मा में ही भली-भाँति रमण करने वाले, निर्विकल्पे=निर्विकल्पक, समाधौ=समाधि में, विहितरतयः=तल्लीन रहने वाले,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्ता-
त्तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम् ।।
एषां द्वित्रैर्गुणैः कनीयान्, पञ्चकैर्मध्यमः, सर्वगुणयोगी महाकविः ।

तल्लीनता यैस्ते. ज्ञानोद्रेकात्-ज्ञानस्य=प्रकाशस्य उद्रेकात्=आधिक्यात्, विघटित-तमोग्रन्थयः—विघटिताः=उच्छिन्नाः तमसः=अज्ञानस्य ग्रन्थयः=बन्धनानि यैस्ते, सत्त्व-निष्ठाः—सत्त्वे=सत्त्वगुणे सात्त्विके भावे वा निष्ठा=रतिः येषान्ते, सात्त्विक-भावापन्ना इत्यर्थः, तमसाम्=अन्धकाराणाम्, मिथ्याज्ञानानामित्यपि, वेति विकल्पे, ज्योतिषाम्=तेजसाम् तत्त्वज्ञानानामित्यपि, परस्तात्=परम्, यम्=यादृशम्, कमपि=अनिर्वचनीयमित्यर्थः, वीक्षन्ते=पश्यन्ति, तम्=तादृशम् अमुम्=एतम्, पुराणम्=सनातनम्, देवम्=परमात्मानम्, मोहान्धः—मोहेन=अज्ञानेन अन्धः=विमूढः, अयम्=एषः दुर्योधन इत्यर्थः, कथम्=केन प्रकारेण, वेत्तु=जानातु । पवित्रान्तःकरणैर्मुनिभिर्ज्ञेयो ब्रह्मस्वरूपः श्रीकृष्णः दुष्टेन दुर्योधनेन कथं ज्ञातुं शक्यः ? न कथमपीति भावः ।

एषामिति । एषाम्=पूर्वकथितकवीनां मध्ये इत्यर्थः, द्वित्रैः=द्वाभ्यां त्रिभिर्वा,

---

ज्ञानोद्रेकात्=ज्ञान के आधिक्य से, विघटिततमोग्रन्थयः=विनष्ट हुई अज्ञान ग्रन्थि वाले, सत्त्वनिष्ठाः=सत्त्व (गुण) में प्रेम करने वाले, तमसाम्=अन्धकार, वा=अथवा, ज्योतिषाम्=प्रकाश के, परस्तात्=परे, यम्=जिस, कमपि=किसी को भी, वीक्षन्ते=देखते हैं, तम्=उस, अमुम्=इन, पुराणम्=सनातन, देवम्=देव को, मोहान्धः=मोह से अन्धा, अयम्=यह, कथम=कैसे, वेत्तु=जाने ।

आत्मा में ही भली-भाँति रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में तल्लीन रहने वाले, ज्ञान के प्राचुर्य से विनष्ट हुई अज्ञान-ग्रन्थि वाले, सत्त्व (गुण) में निष्ठा रखने वाले (मुनिजन) अन्धकार अथवा प्रकाश के परे जिस किसी (अर्थात् अनिवर्चनीय) को देखते हैं, उस इन सनातन देव को मोह (अज्ञान) से अन्धा यह (दुर्योधन) कैसे जान सकता है ?

विशेषः—यहाँ प्रयुक्त 'आत्माराम', 'तमोग्रन्थि', निर्विकल्पसमाधि' आदि शब्द योगशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं । कवि ने उनका अपनी इस रचना में प्रयोग किया है । अतः यह शास्त्र-कवि का उदाहरण है ।

ऊपर कहे हुये इन गुणों में जिसमें दो अथवा तीन गुण हैं वह अधर-कोटि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दश च कवेरवस्था भवन्ति । तत्र च बुद्धिमदाहार्यबुद्धयोः सप्त, तिस्रश्च औपदेशिकस्य । तद्यथा काव्यविद्यास्नातको, हृदयकविः, अन्यापदेशी, सेविता, घटमानो, महाकविः, कविराजः, आवेशिकः, अविच्छेदी, सङ्क्रामयिता च ।

यः कवित्वकामः काव्यविद्योपविद्याग्रहणाय गुरुकुलान्युपास्ते स विद्यास्नातकः । यो हृदय एव कवते निह्नुते च स हृदयकविः ।

गुणैः=शब्दार्थालङ्काररचनात्मकैर्गुणैः, कनीयान्=अधमकोटिगणित इत्यर्थः । पञ्चकैः=पञ्चभिर्गुणैर्युक्तः, मध्यमः=मध्यकोटिगणित इत्यर्थः । सर्वगुणयोगी=पूर्वोक्तैर्निखिलैर्गुणैर्युक्तस्तु, महाकविः=महाकविव्यपदेशार्हो भवतीत्यर्थः ।

प्रथमतः काव्यविद्यास्नातकमाह—य इति । कवित्वकामः=कवित्वं कामयमानः काव्यविद्योपविद्याग्रहणाय—काव्यविद्यानाम्=काव्योपकारकाणामान्वीक्षिक्यादि-विद्यानामुपविद्यानाञ्च=कलादीनामुपविद्यानामित्यर्थः, ग्रहणाय=ग्रहीतुम्, गुरुकुलानि=आचार्याश्रमाणि, उपास्ते=सेवते, स प्रथमविधः कविरित्यर्थः ।

हृदयकविमाह—यो हृदय एवेति । यो लज्जया दोषप्रकाशनभयेन वा हृदये=मनसि, एकान्ते प्रकोष्ठ इत्यर्थः, कवते=कवितां करोति, निह्नुते=गोपायति, स हृदयकविरस्तीति ।

का कवि है । पाँच गुणों से युक्त कवि मध्यम कोटि का कवि तथा समस्त गुणों से युक्त कवि महाकवि कहा गया है ।

कवि की दश अवस्थायें होती हैं । इनमें बुद्धिमान् और आहार्यबुद्धि कवि की सात तथा औपदेशिक कवि की तीन अवस्थायें होती हैं । इन दस अवस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं—१. काव्यविद्यास्नातक, २. हृदयकवि, ३. अन्यापदेशी, ४. सेविता, ५. घटमान, ६. महाकवि, ७. कविराज, ८. आवेशिक, ९. अविच्छेदी और १०. संक्रामयिता ।

जो कवित्व (प्राप्ति) की इच्छा से काव्य के लिए उपयुक्त आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं तथा कला आदि उपविद्याओं के ज्ञान के लिये गुरुकुलों का सेवन करता है, वह विद्यास्नातक है ।

जो मन ही मन कविता करता है तथा (संकोच अथवा दोष के भय से उसे) छिपाता है वह हृदयकवि है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यः स्वमपि काव्यं दोषभयादन्यस्येत्यपदिश्य पठति सोऽन्यापदेशो ।
यः प्रवृत्तवचनः पौरस्त्यानामन्यतमच्छायामभ्यस्यति स सेविता ।
योऽनवद्यं कवते न तु प्रबध्नाति स घटमानः ।
योऽन्यतरप्रबन्धे प्रवीणः स महाकविः ।

तृतीयप्रकारमाह—यः स्वमपीति । स्वमपि काव्यम्=स्वरचितमपि काव्यमित्यर्थः, दोषभयात्=दोषप्रदर्शनभियेति यावत्, अन्यस्य=इयं कविताऽपरस्य वर्तत इति, अपदिश्य=उक्त्वा, कथयित्वा, पठति=श्रावयति, सोऽन्यापदेशी कविरस्ति ।

यः प्रवृत्तवचनः । प्रवृत्तवचनः=किञ्चित्किञ्चित्प्रचलितकविताप्रवृत्तिः, पौरस्त्यानाम्=पूर्वं जातानाम्, अथवा गौडदेशोद्भवानाम्, अन्यतमस्य=कस्यचिदेकस्य छायाम्=सरणिम् ।

घटमानमाह—योऽनवद्यमिति । अनवद्यम्=निर्दोषं रसभावादिभरितमित्यर्थः, न तु प्रबध्नाति=कस्यचिदेकस्य प्रबन्धस्य निर्माणं न करोति, स घटमानः कविरस्ति ।

महाकविमाह—य इति । अन्यतरप्रबन्धे=गद्यपद्यान्यतरप्रबन्धरचनायाम्, प्रवीणः=निपुणः, स महाकविरित्युक्तः ।

जो अपनी ही कविता को दोष अथवा विपरीत आलोचना के भय से, 'यह कविता दूसरे की है', ऐसा बतलाकर पढ़ता या सुनाता है, वह अन्यापदेशी कवि है ।

जो कुछ-कुछ कविता करने लगता है और प्राचीन कवियों अथवा गौडीय रीति के शैली वाले कवियों में किसी एक की कविता-सरणि का अभ्यास करता है, वह सेविता कवि है ।

जो कवि रसभाव आदि से पूर्ण एवं निर्दोष (भिन्न-भिन्न विषयों पर फुटकर) रचना तो करता है, किन्तु किसी एक प्रबन्ध (महाकाव्य आदि) का निर्माण नहीं करता है वह घटमान कवि है ।

जो गद्यात्मक या पद्यात्मक (अथवा संस्कृत भाषा में या प्राकृत भाषा में) प्रबन्ध के निर्माण में प्रवीण होता है वह महाकवि कहलाता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्तु तत्र तत्र भाषाविशेषे तेषु प्रबन्धेषु तस्मिंस्तस्मिंश्च रसे स्वतन्त्रः स कविराजः। ते यदि जगत्यपि कतिपये।

यो मन्त्राद्युपदेशवशाल्लब्धसिद्धिरावेशसमकालं कवते स आवेशिकः।

यो यदैवेच्छति तदैवाविच्छिन्नवचनः सोऽविच्छेदी।

यः कन्याकुमारादिषु सिद्धमन्त्रः सरस्वतीं सङ्क्रामयति स सङ्क्रामयिता।

काव्यपाकः सततमभ्यासवशतः सुकवेः वाक्यं पाकमायाति। "कः पुनरयं

कविराजमाह—यस्त्विति। तत्र तत्र भाषाविशेषे=प्राकृतसंस्कृतापभ्रंशादिष्वित्यर्थः प्रबन्धनिर्माणे स्वातन्त्र्येण रससंयोजने च समर्थः स कविराजो निगद्यते। एतादृशा, कविराजास्तु जगति कतिपये एव सन्ति।

आवेशिकमाह—यो मन्त्रादिति। मन्त्राद्युपदेशवशात्=मन्त्रप्रभावात्, आदिपदात्सारस्वतचूर्णसेवनादिर्ग्राह्यः।

काव्यपाकं विवृणोति—सततमिति। कः पुनरयं पाक इत्याचार्याणां सन्देहः।

जो उन-उन भाषाओं में, उन-उन प्रबंधों में तथा विभिन्न रसों में स्वतंत्रतापूर्वक रचना करने में समर्थ होता है, वह कविराज कहा गया है। सम्पूर्ण जगती-तल पर कुछ ही ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो कविराज कहे जाने के पात्र हैं।

जो कवि मन्त्र आदि के उपदेश से सिद्धि प्राप्त कर आवेश के समय ही कविता की रचना करता है, वह आवेशिक है।

जो जब चाहे, तभी धारा-प्रवाह रूप से जिस किसी भी विषय पर आशु कविता करता है, वह अविच्छेदी कवि कहलाता है।

(सारस्वत) मन्त्र को सिद्ध किया हुआ जो व्यक्ति अविवाहित कन्याओं या कुमारों में सरस्वती का सञ्चार कर देता है, वह संक्रामयिता कहा जाता है।

काव्यपाक—

निरन्तर अभ्यास से सुकवि के वाक्यों में परिपक्वता (पाक) आती है। आचार्यों का प्रश्न है कि 'यह पाक है क्या वस्तु ?'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाकः ?" इत्याचार्याः । "परिणामः" इति मङ्गलः । "सुपां तिङां च श्रवः-प्रिया व्युत्पत्तिः" इति मङ्गलः । सौशब्द्यमेतत् । "पदनिवेशनिष्कम्पता पाकः" इत्याचार्याः । तदाहुः—

आवापोद्धरणे तावद्यावद्दोलायते मनः ।
पदानां स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती ॥

"आग्रहपरिग्रहादपि पदस्थैर्यपर्यवसायस्तस्मात्पदानां परिवृत्तिर्विमुख्यं पाकः" इति वामनीयाः ॥ तदाहुः—

अत्र मङ्गलाचार्यस्योत्तरम्—परिणामः पाक इति । श्रवःप्रिया=श्रवणसुखकरी । "सुपां तिङां च व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम् । तदेतदाहुः सौशब्द्यं नार्य-व्युत्पत्तिरीदृशी ।" भामह० १. १४ ॥ तथा "व्युत्पत्तिः सुप्तिङां या तु प्रोच्यते सा सुशब्दता ।" सरस्वतीकण्ठाभरणम् ।

आचार्योक्तं समर्थयति—आवापोद्धरणे । आवापः=काव्यानुकूलपदसन्निवेशम् उद्धरणम्=प्रतिकूलपदपरित्यागः, एतद् द्वयं तावदेव जायते यावन्मनो दोलायते= निश्चयं न प्राप्नोति । पदानाम्=शब्दानाम्, शब्दगुम्फन इति भावः, स्थैर्ये= दार्ढ्ये, स्थापिते=जाते, सरस्वती=वाणी, सिद्धा=हस्तगता, हन्तेति हर्षेऽव्ययपदम् ।

आचार्य मङ्गल—(निरन्तर अभ्यास का) परिणाम ही पाक है ।

आचार्य—यह परिणाम है क्या ?

आचार्य मङ्गल—सुबन्त एवं तिङन्त शब्दों की श्रवण-सुखद व्युत्पत्ति ही परिणाम है । यही सौशब्द्य (सुन्दर शब्दों का प्रयोग) है ।

आचार्य—पद गुम्फन में निर्भीकता या निःसंन्दिग्धता ही पाक है । जैसा कि कहा भी गया है—

(कविता करते समय) अनुकूल पदों के रखने और हटाने में जब तक चित्त चञ्चल रहता है (तभीतक कवि की अपरिपक्व अवस्था समझनी चाहिए), किन्तु जब पदों के विन्यास में स्थिरता आ जाय, तब समझना चाहिए कि अब सरस्वती सिद्ध हो गई हैं (अर्थात् कवि सिद्ध सारस्वत कवि हो गया है) ।

'आग्रहवशात् भी पदों में स्थिरता आती है । अतः पद परिवर्तन से विमुखता ही पाक है ।' यह वामन के अनुयायियों का मत है । जैसा कि कहा भी गया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्पदानि त्यजन्त्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम् ।
तं शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते ॥

"इयमशक्तिर्न पुनः पाकः" इत्यवन्तिसुन्दरी । यदेकस्मिन्वस्तुनि महाकवीनामनेकोऽपि पाकः परिपाकवान्भवति, तस्माद्रसोचितशब्दार्थसूक्तिनिबन्धनः पाकः । यदाह—

गुणालङ्काररीत्युक्तिशब्दार्थग्रथनक्रमः ।
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः स मां प्रति ॥

तदुक्तम्—

सति वक्तरि सत्यर्थे शब्दे सति रसे सति ।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ॥

वामनाभिप्रायमेव समर्थयन्नाह—यत्पदानीति । यत् यतः, पदानि प्रबंधघटितानि पदानि, परिवृत्तिसहिष्णुताम् परिवर्तनसहत्वम् त्यजन्ति परित्यजन्ति, परिवर्तनं न सहन्त इत्यर्थः । शब्दन्यासनिष्णाताः—शब्दानाम् पदानाम् न्यासे गुम्फने निष्णाताः पण्डिताः, कवयः, तं शब्दपाकं प्रचक्षते कथयन्ति ।

गुणालङ्कारेत्यादिः । गुणानाम् अलङ्काराणां रीतीनामुक्तीनां शब्दानामर्था-

---

जो पद एक बार प्रयुक्त होने पर परिवर्तन की सहिष्णुता को छोड़ देते हैं (अर्थात् बदले नहीं जा सकते) इसी को शब्द-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् 'शब्दपाक' कहते हैं ।

(किन्तु) अवन्ति सुन्दरी का कहना है कि यह तो अशक्ति है, इसे 'शब्द-पाक' नहीं कह सकते हैं । क्योंकि महाकवियों के एक ही काव्य में अनेक पाठ मिलते हैं । वे सभी परिपक्व भी होते हैं । इसलिए रस के अनुकूल शब्द, अर्थ और सूक्तियों का गुम्फन ही 'पाक' है । क्योंकि कहा भी गया है—

गुण, अलङ्कार, रीति, उक्ति, शब्द और अर्थ का गुम्फन-क्रम जिस कारण से बुद्धिमानों के लिए आस्वाद-योग्य होता है, वही मेरे विचार से 'वाक्य-पाक' है । कहा भी गया है—

वक्ता, अर्थ, शब्द और रस—इन सबके रहने पर भी जिसके बिना वाणी मधुरता का निस्यन्द नहीं बहाती है वह कोई वस्तु है (अर्थात् वही पाक है) ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कार्यानुमेयतया यत्तच्छब्दनिवेद्यः परं पाकोऽभिधाविषयस्तत्सहृदय-प्रसिद्धिसिद्ध एव व्यवहाराङ्गमसौ" इति यायावरीयः ।

स च कविग्रामस्य काव्यमभ्यस्यतो नवधा भवति ।

तत्राद्यन्तयोरस्वादु पिचुमन्दपाकम् ।

आदावस्वादु परिणामे मध्यं बदरपाकम् ।

आदावस्वादु परिणामे स्वादु मृद्वीकापाकम् ।

नाऽन्त्र ग्रथनस्य गुम्फनस्य क्रमो येन हेतुना, स्वदते आस्वादयोग्यो भवति, स मां प्रति मन्मते; काव्यपाकोऽस्तीति ।

पाकमेव स्तुवन्नाह—सतीति । वक्तरि, शब्दे, अर्थे, रसे, च सति, तदस्ति, येन विना=यस्याभावे, वाक्=रचना, मधु=माधुर्यम् न स्रवति=न वहति, स पाको वर्तते अवश्यमभ्युपेयश्च सः ।

यायावरीय राजशेखर का मत है कि—यह पाक (सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने रूप) कार्य से अनुमान किया जाने वाला, जैसी रचना वैसा पाक कहा जाने वाला, अभिधा का विषय और केवल सहृदयों के अनुभव से ही सिद्ध होता है । वस्तुतः यह व्यवहार का अङ्ग है । (अर्थात् पाक का निर्णय केवल रसिक आलोचक ही कर सकते हैं । किन्तु उनका यह निर्णय काव्य-दर्शन पर निर्भर करता है) ।

काव्य-रचना का अभ्यास करने वाले कवियों के लिए नौ प्रकार का पाक होता है—

१—जो काव्य आदि तथा अन्त में (अर्थात् आदि से अन्त तक) अस्वादु होता है, उसे 'पिचुमन्दपाक' कहते हैं । (पिचुमन्द नीम को कहते हैं, नीम सर्वदा कटुक ही होता है) ।

२—आदि में अस्वादु (नीरस) और अन्त में कुछ-कुछ सरस काव्य 'बदरपाक' कहा जाता है । (बेर का फल खाने में पहले कुछ फीका तथा बाद में कुछ स्वादिष्ट प्रतीत होता है) ।

३—आदि में नीरस (अस्वादु) और अन्त में सरस काव्य 'मृद्वीकपाक' कहा जाता है । (अंगूर को मृद्वीका कहते हैं ।) यह आरम्भ में कुछ कसैला किन्तु अन्त में अति मधुर होता है) ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्पदानि त्यजन्त्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम् ।
तं शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते ॥

"इयमशक्तिर्न पुनः पाकः" इत्यवन्तिसुन्दरी । यदेकस्मिन्वस्तुनि महाकवीनामनेकोऽपि पाकः परिपाकवान्भवति, तस्माद्रसोचितशब्दार्थसूक्तिनिबन्धनः पाकः । यदाह—

गुणालङ्काररीत्युक्तिशब्दार्थग्रथनक्रमः ।
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः स मां प्रति ॥

तदुक्तम्—

सति वक्तरि सत्यर्थे शब्दे सति रसे सति ।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ॥

वामनाभिप्रायमेव समर्थयन्नाह—यत्पदानीति । यत् यतः, पदानि प्रबंधघटितानि पदानि, परिवृत्तिसहिष्णुताम् परिवर्तनसहत्वम् त्यजन्ति परित्यजन्ति, परिवर्तनं न सहन्त इत्यर्थः । शब्दन्यासनिष्णाताः—शब्दानाम् पदानाम् न्यासे गुम्फने निष्णाताः पण्डिताः, कवयः, तं शब्दपाकं प्रचक्षते कथयन्ति ।

गुणालङ्कारेत्यादिः । गुणानाम् अलङ्काराणां रीतीनामुक्तीनां शब्दानामर्था-

---

जो पद एक बार प्रयुक्त होने पर परिवर्तन की सहिष्णुता को छोड़ देते हैं (अर्थात् बदले नहीं जा सकते) इसी को शब्द-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् 'शब्दपाक' कहते हैं ।

(किन्तु) अवन्ति सुन्दरी का कहना है कि यह तो अशक्ति है, इसे 'शब्दपाक' नहीं कह सकते हैं । क्योंकि महाकवियों के एक ही काव्य में अनेक पाठ मिलते हैं । वे सभी परिपक्व भी होते हैं । इसलिए रस के अनुकूल शब्द, अर्थ और सूक्तियों का गुम्फन ही 'पाक' है । क्योंकि कहा भी गया है—

गुण, अलङ्कार, रीति, उक्ति, शब्द और अर्थ का गुम्फन-क्रम जिस कारण से बुद्धिमानों के लिए आस्वाद-योग्य होता है, वही मेरे विचार से 'पाक्य-पाक' है । कहा भी गया है—

वक्ता, अर्थ, शब्द और रस—इन सबके रहने पर भी जिसके बिना वाणी मधुरता का निस्यन्द नहीं बहाती है वह कोई वस्तु है (अर्थात् वही पाक है) ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कार्यानुमेयतया यत्तच्छब्दनिवेद्यः परं पाकोऽभिधाविषयस्तत्सहृदय-प्रसिद्धिसिद्ध एव व्यवहाराङ्गमसौ" इति यायावरीयः ।

स च कविग्रामस्य काव्यमभ्यस्यतो नवधा भवति ।

तत्राद्यन्तयोरस्वादु पिचुमन्दपाकम् ।

आदावस्वादु परिणामे मध्यमं बदरपाकम् ।

आदावस्वादु परिणामे स्वादु मृद्वीकापाकम् ।

नाऽन्च ग्रथनस्य गुम्फनस्य क्रमो येन हेतुना, स्वदते आस्वादयोग्यो भवति, स मां प्रति मन्मते; काव्यपाकोऽस्तीति ।

पाकमेव स्तुवन्नाह—सतीति । वक्तरि, शब्दे, अर्थे, रसे, च सति, तदस्ति, येन विना=यस्याभावे, वाक्=रचना, मधु=माधुर्यम् न स्रवति=न वहति, स पाको वर्तते अवश्यमभ्युपेयश्च सः ।

यायावरीय राजशेखर का मत है कि—यह पाक (सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने रूप) कार्य से अनुमान किया जाने वाला, जैसी रचना वैसा पाक कहा जाने वाला, अभिधा का विषय और केवल सहृदयों के अनुभव से ही सिद्ध होता है । वस्तुतः यह व्यवहार का अङ्ग है । (अर्थात् पाक का निर्णय केवल रसिक आलोचक ही कर सकते हैं । किन्तु उनका यह निर्णय काव्य-दर्शन पर निर्भर करता है) ।

काव्य-रचना का अभ्यास करने वाले कवियों के लिए नौ प्रकार का पाक होता है—

१—जो काव्य आदि तथा अन्त में (अर्थात् आदि से अन्त तक) अस्वादु होता है, उसे 'पिचुमन्दपाक' कहते हैं । (पिचुमन्द नीम को कहते हैं, नीम सर्वदा कटुक ही होता है) ।

२—आदि में अस्वादु (नीरस) और अन्त में कुछ-कुछ सरस काव्य 'बदरपाक' कहा जाता है । (बैर का फल खाने में पहले कुछ फीका तथा बाद में कुछ स्वादिष्ट प्रतीत होता है) ।

३—आदि में नीरस (अस्वादु) और अन्त में सरस काव्य 'मृद्वीकपाक' कहा जाता है । (अंगूर को मृद्वीका कहते हैं ।) यह आरम्भ में कुछ कसैला किन्तु अन्त में अति मधुर होता है) ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

DATE DUE

आदौ मध्य
आद्यन्तयोर्म
आदौ मध्य
आदावुत्तम
आदावुत्तम
आद्यन्तयोः
तेषां त्रिष्व

४—आदि
नीरस) काव्य
स्वादिष्ट किन्तु
५—आदि
'तिन्तिडीकपाक'
समरस प्रतीत ह
६—प्रारम्भ
कहलाता है।
मधुर लगता है)
७—आदि
'क्रमुकपाक' क
लगती है)।
८—आदि
(त्रपुस=ककड़ी

९—आदि और अन्त से (अर्थात् आदि से अन्त तक) स्वादु (सरस) काव्य 'नारिकेरपाक' कहलाता है। (नारिकेर=नारियल आदि से अन्त तक मधुर होता है)।

इन तीन इकाइयों में विभक्त पाकों में से प्रत्येक इकाई के प्रथम प्रकार के पाक (अर्थात् पिचुमन्दपाक, वार्ताकपाक और क्रमुकपाक) सर्वथा त्याज्य हैं। अकवि होना श्रेष्ठ है किन्तु कुकवि होना ठीक नहीं है। क्योंकि कुकविता तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Co... Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

155828
Class No 891.21 Acc. No. ...
Author ...राजशेखर... Book No RAJ...
Title...काव्यमीमांसा...

Due on	Borrower's Name	Returned on

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
बाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

स्यात् । ...स्कारो
हि सर्व... ...भवति ।

...तारतायै

...न अन्न-

...रणे

...कुर्वतः,
...ोपादान-
...त् पुरुषः,

(अर्थात् ...क पात्र हैं
(अर्थात् संस्कार करके इन्हें श्रेष्ठ बनाया जाता है) ...क संस्कार सबके गुणों को अधिक उत्कृष्ट बनाने वाला होता है। अनेक धातुओं से मिश्रित सुवर्ण भी अग्नि में तपाने से शुद्ध सुवर्ण बन जाता है। शेष तीन पाक (मृद्वीका सहकार और नारिकेल) वाले कवि (या काव्य) ग्राह्य हैं।

स्वभावतः शुद्ध वस्तु किसी भी संस्कार की अपेक्षा नहीं रखती। शाण मुक्तामणि की चमक को अधिक नहीं बढ़ा सकता है।

जिस काव्य-रचना में पाक अव्यवस्थित रूप से रहता है (अर्थात् कहीं वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयमिति । अत्र=अस्मिन् ग्रन्थे, विधिः=प्रकारः, दर्शितः=निर्दिष्टः, किन्तु त्रिजगति शिष्याणां बहुप्रकारतोपलभ्यते ।

॥ इति शाण्डिल्यगोत्रोद्भवेन रमाशङ्करत्रिपाठिना विरचितायां काव्यमीमांसाकौमुद्यां पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

काव्य सरस होता है, कहीं नीरस और कहीं मध्यम होता है), उसे कपित्थपाक कहते हैं। जैसे पलाल (पुआल) को धुनने से शायद कहीं कोई एक आध अन्न मिल जाय, वैसे ही कपित्थपाक वाली रचना में कहीं ढूंढने पर एक-आध ही सूक्ति मिल सकती है।

भली-भाँति अभ्यास करने वाले कवि के काव्य के पाक नौ प्रकार के होते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि उन्हें पहले हेय (त्याज्य) और उपादेय (ग्राह्य) रूप में बाँट लें।

यहाँ शिष्यों की तीन प्रकार की ही श्रेणियाँ प्रदर्शित की गई हैं। किन्तु त्रिलोकी में इनके विविध प्रकार होते हैं।

॥ राजशेखर के द्वारा निर्मित काव्य-मीमांसा के कविरहस्य नामक प्रथम अधिकरण का विशिष्ट शिष्यों में काव्य-पाकरूप पञ्चम अङ्क समाप्त हुआ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu